SAPTHAGIRI (HINDI)
ILLUSTRATED MONTHLY
Volume:52, Issue: 6
November-2021, Price Rs.5/-.
No. of pages-56.

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

नवम्बर-2021 रु.5/-

तिरुमल श्रीहरि के पुष्पयाग
(११-११-२०२१)

तिरुचानूर
श्री पद्मावती देवी का ब्रह्मोत्सव

२०२१, नवम्बर २१ से दिसंबर ०८ तक

२१-११-२०२१ सोमवार
दिन - लक्षकुंकुमार्चना
रात - सेनाधिपति उत्सव, अंकुरार्पण

३०-११-२०२१ मंगलवार
दिन - तिरुच्चि उत्सव, ध्वजारोहण
रात - लघुशेषवाहन

०१-१२-२०२१ बुधवार
दिन - महाशेषवाहन
रात - हंसवाहन

०२-१२-२०२१ गुरुवार
दिन - मोतीवितानवाहन
रात - सिंहवाहन

०३-१२-२०२१ शुक्रवार
दिन - कल्पवृक्षवाहन
रात - हनुमंतवाहन

०४-१२-२०२१ शनिवार
दिन - पालकी उत्सव, सा - वसंतोत्सव
रात - गजवाहन

०५-१२-२०२१ रविवार
दिन - सर्वभूपालवाहन
रात - गरुडवाहन

०६-१२-२०२१ सोमवार
दिन - सूर्यप्रभावाहन
रात - चंद्रप्रभावाहन

०७-१२-२०२१ मंगलवार
दिन - रथोत्सव
रात - अश्ववाहन

०८-१२-२०२१ बुधवार
दिन - पालकी तिरुच्चि उत्सव, तीर्थवारी अवभृथोत्सव, चक्रस्नान, पंचमीतीर्थ
रात - तिरुच्चि उत्सव, ध्वजावरोहण

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति।।

(- *श्रीमद्भगवद्गीता १-२५*)

भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खडा करके इस प्रकार कहा कि हे पार्थ! युद्द के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देख।

गीताशास्त्र मिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पद मवाप्नोति भय शोकादि वर्जितः।।

(- गीता मकरंद, गीता की प्रशस्ति)

परम पावन इस गीता शास्त्र का प्रयत्न पूर्वक जो पठन करता है वह भय एवं शोक रहित होकर विष्णुपद प्राप्त करेगा।

एस.वी.गोसंरक्षण न्यास

गायों का संरक्षण, उसके द्वारा उपलब्ध आध्यात्मिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए सन् १९५६ में ति.ति.दे. ने गोसंरक्षण शाला और सन् २००२ में एस.वी.गोसंरक्षण न्यास को आरंभ किया है। दाताओं से विनती है कि इस न्यास को उदारतापूर्वक धनराशि दान में दें और गोशाला में रहनेवाले गऊओं के पालन-पोषण में अपना सहयोग दें। आयकर कानून के विभाग ८० (जी) के अनुसार आप आयकर से छूट प्राप्त कर सकते हैं।

दाता धनराशि को किसी भी राष्ट्रीय बैंक में 'एग्जिक्यूटिव अफ़सर, टी.टी.डी, तिरुपति' के नाम से मांगड्राफ्ट या चेक के रूप में भेज सकते हैं।

कृपया मांगड्राफ्ट या चेक इस पते पर भेजें-

द डायरेक्टर, एस.वी.गोसंरक्षण न्यास,
एस.वी.डैयरी फार्म, चन्द्रगिरि रोड,
ति.ति.दे.तिरुपति-५१७५०२.

दूरभाषः ०८७७-२२७७७७७, २२६४५७०.

सप्तगिरि

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की सचित्र मासिक पत्रिका

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति।।

वर्ष-५२ नवम्बर-२०२१ अंक-०६

विषयसूची

कार्तिक मास में दीप-प्रज्वलन का महत्व	डॉ.एच.एन.गौरीराव	07
मन का तन पर प्रभाव	श्री अंकुश्री	12
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	16
महर्षि अत्रि	डॉ.जी.सुजाता	18
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	22
श्री रामानुज नूट्रन्दादि	श्री श्रीराम मालपाणी	23
सत्यभामा	डॉ.के.एम.भवानी	24
श्रीमद्भगवद्गीता	कुमारी जे.दिव्यश्री	31
हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश	डॉ.एम.आर.राजेश्वरी	33
तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर (तिरुपति बालाजी)	प्रो.यद्दनपूडि वेङ्कटरमण राव प्रो.गोपाल शर्मा	36
मंगलाशासन आल्वार-पाशुरम्	श्री के.रामनाथन	39
जलाधिदेव श्री वेंकटेश्वर	आचार्य आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी	41
श्री रामेश्वरम मंदिर	कुमारी बी.आर.गरिमाराव	44
मेहन्दी	डॉ.सुमा जोषी	48
नीतिकथा - संतोष धन	श्रीमती के.प्रेमा रामनाथन	50
चित्रकथा - तिरुप्पाण आल्वार	डॉ.एम.रजनी	52
क्विज	डॉ.एन.प्रत्यूषा	54

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri.helpdesk@tirumala.org

गौरव संपादक
डॉ.के.एस.जवहर रेड्डी, आई.ए.एस.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
डॉ.के.राधारमण

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री पी.रामराजु
विशेष अधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशी वार्षिक चंदा .. रु.850-00

मुखचित्र - तिरुमल श्री बालाजी का पुष्पयाग।
चौथा कवर पृष्ठ - तिरुमल मंदिर में दीपावली।

अन्य विवरण के लिए:
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, Editor - 2264360.

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं।

- प्रधान संपादक

संपादकीय

दीपावली - दीप का वैभव

भगवान श्रीराम, सीता मय्या व लक्ष्मण जी के चौदह वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या लौटे थे। इस शुभ अवसर पर खुशी में हरेक घर में मिट्टी के दीपक जलाते हैं और घरों को रंगोली से सजाते हैं। एक और पौराणिक घटना, श्रीकृष्ण-सत्यभामा नरकासुर वध चतुर्दशी के दिन किया था। इसलिए सारे लोक वासि दीप जलाकर अपना आनंद व्यक्त किया था।

''दीप'' (दीपक) और ''आवली'' (पंक्ति) से मिलकर 'दीपावली' शब्द बना है। जिसका अर्थ है 'दीपों की पंक्ति'। दीपावली आश्वीयुज माह की अमावस्या के दिन मनाया जाता है। अमावस्या की अंधेरी रात असंख्य दीपों से जगमगाने लगती है। यह त्योहार पांच दिनों तक मनाया जाता है। धनतेरस से लेकर भाई दूज तक यह त्योहार चलता है।

अंधकार को दूर करते हुए क्रांति रेखा प्रसरण करने में दीपों का स्थान विशिष्ट हैं। हमारे हैंदव संस्कृति, संप्रदाय में दीप का विशिष्ट स्थान है। सबेरे सूरज के कांति किरणों द्वारा ही हमारा दिन आरंभ होता है। इसलिए सूर्यास्तमय के पहले ही घर में दीपाराधना करते हैं।

दीपं ज्योति परंब्रह्म दीपं सर्वतमोपहम्।
दीपेन साध्यते सर्वं संध्यादीप नमोस्तुते।।

'दीप' प्राण का प्रतीक बन जाता है। जीवात्मा के साथ-साथ परमात्मा का भी प्रतिरूप है। पूजा प्रारंभ के समय दीप को जलाया जाता है। षोडषोपचारों में प्रधान स्थान पाया है। दीप माने कांति, ज्ञान, आशा, शक्ति। लक्ष्मी की निवास स्थानों में दीप भी एक है। कोई भी कार्य आरंभ के पहले ज्योति प्रज्वलन से शुरू करते है। शुभ-अशुभ के लिए दीपज्योति होना हमारा संप्रदाय है।

मंदिर के प्रांगण में दीप, वृक्षों के सामने दीप, ध्वजस्तंभ के पास दीप, घर के पूजा मंदिर में दीप, घर के अंगन में दीप, पुष्पों के बीच में दीप, रंगोली के बीच में दीप जलाना जैसे चर्या से असुर गुणों को, गणों को निवारण करते हुए सत्व व सत्य का प्रभोद कराते हैं। दीपज्योति में तीन रंग सत्व, रज, तमो गुणों का प्रतीक है। त्रिकरण शुद्धि से दीप जलाते है तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य जैसे अरिषड्वर्ग हमारे अंदर प्रवेश न करते हैं।

सद्गति को पाने के लिए दीप एक कारक बन जाता है। परमात्मा के प्रतीक दीपज्योति हमारे आध्यात्मिक प्रगति का आलंबन है। अंधकार से ज्ञान की ओर, अमंगल से मंगलप्रद की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर हमारा जीवन जाने के लिए अंतर्गत प्रभोदन करते है।

दीपज्योति ध्यानाभ्यास परमात्मा दर्शन के लिए एक मार्ग है।

कार्तिक मास में दीप-प्रज्वलन का महत्व

- डॉ.एच.एन.गौरीराव, मोबाइल - ९७४२५८२०००.

दीपं ज्योति परंब्रह्म दीपं सर्वतमोपहम्।
दीपेन साध्यते सर्वं संध्यादीप नमोस्तुते।।

सामान्यतः हर घर में संध्या के समय दीप के प्रज्वलन को जलाते वक्त इस मंत्र का पठन किया जाता है। दीप-प्रज्वलन का महत्त्व इसमें बताया गया है कि दीपज्योति ही परब्रह्म स्वरूप है। उसकी उपासना करने से सब पाप मिट जाते है। हिंदू संप्रदाय के अनुसार कार्य शुभ हो या अशुभ, दीप जलाया जाता है। कोई भी कार्य के शुभारंभ के समय दीप को प्रज्वलित किया जाता हैं, तो दूसरी ओर किसी की मृत्यु होती तो पार्थिव शरीर के सामने दीप को जलाके रखते हैं।

वैसे तो, आग के उपयोग का आरंभ होने के बाद ही मानव संस्कृति का विकास होता गया। पुराने जमाने में जब विद्युत दीप नहीं थे, तब रात के समय अंधकार को दूर करने के लिए दीप का महत्व उस समय बहुत अधिक था। भारतीय संस्कृति में धार्मिक तथा सामाजिक रूप से दीप की बड़ी विशिष्टता है। पारंपरिक रूप में दीप का प्रकाश ही एकमात्र आधार था। मिट्टी का होता था। परंतु, आजकल अनेक धातुओं के जैसे- पंचलोह, कांच, चांदी और सोने के दीप का भी उपयोग किया जाता हैं। साधारणतया दीप में गाय के घी को या तिल के तेल को उपयोग किया जाता है। दीप को जलाने से वहाँ के आस-पास का वातावरण शुद्ध हो जाता है। तेल या घी के दिये से वातावरण की हवा शुद्ध होकर हमारे स्वास्थ्य के लिए जो अच्छे अंश चाहिएँ, वो अंश वहाँ के परिसर में मिलते हैं। इसी कारण से हवन करने के बाद वहाँ के परिसर में पवित्रता और मानसिक आनंद का अनुभव कर सकते हैं। दिये से हमारी नकारात्मक भावनाएँ मिटकर सकारात्मकता जागृत होती है। इसलिए खिन्नता, आतंक जैसे मनोरोग मिट जाते हैं। इतना ही नहीं, जलते दीप को एकाग्र दृष्टि से कुछ समय तक देखते रहने से एकाग्रता बढ़ती है और दृष्टिदोष का निवारण होता हैं। योग में इसका प्रयोग किया जाता है, जो 'त्राटक' कहाँ जाता है।

जिस प्रकार बाहर प्रकाश के लिए दीप को प्रज्वलित किया जाता है, उसी प्रकार हमारे अंतरंग में एक ज्योति

है, जो हमारी भृकुटि के मध्य में है; ध्यान से उस ज्योति को प्रज्वलित करके मनुष्य आध्यात्मिक साधना में सफल हो सकता है। यहाँ ज्योति निराकार परब्रह्म परमेश्वर का प्रतीक है। हमारे ऋषि-मुनियों ने अनेक वर्षों तक तपस्या करके ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करके, उस ज्ञान रूपी ज्योति को अपने शिष्यों में जलाकर अज्ञान रूपी अंधकार को दूर किया करते थे। इस रूप में वे स्वस्थ समाज का निर्माण करके, समाज में शांति और उन्नति को लाये। अग्नि सूत्र से ऋग्वेद का आरंभ होता है। हमारे पूर्वजों के लिए अग्नि ही सब कुछ थी। उसी दीप ज्योति के महत्व को बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है-

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।।
ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः।।

अर्थात दिव्य ज्योति असत्य से सत्य की ओर; अज्ञानांधकार से प्रकाश की ओर; मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली है।

दीप को भगवान का स्वरूप माना गया है। इससे दीपावली त्यौहार के वक्त दीप को महालक्ष्मी समान मानकर पूजित की जाती है, तो पति संजीविनी व्रत में शिव के रूप में ज्योति स्तंभ को रखकर पूजा की जाती है। श्रावण मास में मंगल गौरी व्रत के समय 26 चावल के आटे के दीपकों को जलाया जाता है, तथा उत्थान द्वादशी के दिन तुलसी पूजा के समय आंवले के दीप जलाएँ जाते हैं, तो शक्ति के मंदिरों में राहुकाल में नींबू के दीप जलाएँ जाते हैं। भगवान शनि देव के मंदिर में एक काले कपड़े में तिल को रखके, तिल के तेल में भिगोके दीप जलाये जाते है, जिससे शनि ग्रह के दोषों से मुक्ति मिल सके। दीप विजय का भी संकेत है, इसलिए पुराने जमाने में युद्ध को जाते समय योद्धा को तिलक लगाकर आरती उतारते थे। जिस प्रकार भक्ति और श्रद्धा के साथ भगवान से प्रार्थना करने पर अपनी मिन्नतें पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार दीप स्वयं भगवान का रूप होने से भक्ति और श्रद्धा के साथ भगवान को मन में भरकर दीप जलाने पर अवश्य हमारी मिन्नतें पूर्ण होती हैं। पूजा करते समय भगवान को दीप दर्शाते हुए यह मंत्र पढ़ाया जाता है -

साज्यं त्रिवर्ति संयुक्तं वह्निना योजितं मया
गृहाण मंगलं दीपम् त्र्यैलोक्य तिमिरापहम्।
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाया परमात्मने
त्राहिमां नरकात् घोरात् दिव्यर्ज्योतिर्नमोस्तुते।।

अर्थात ''हे परमात्मा! घी के त्रिवर्ति के दीप को भक्ति पूर्वक समर्पित करता हूँ, जो मंगलकारिणी है और जिससे त्रिलोक का अंधकार दूर होता है। मुझे नरक से उद्धार करनेवाली दिव्य ज्योति! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।''

विविध प्रकार के दीप :

हिंदू धार्मिक संप्रदाय में विविध प्रकार के दीपों को प्रज्वलित किया जाता है। इनकी श्रद्धा और भक्ति समेत उपासना की जाती है -

कामाक्षी दीप :

दीपक के पिछले भाग में गजलक्ष्मी का चित्र हो तो वह 'कामाक्षी दीप' या 'गजलक्ष्मी दीप' कहलाता है।

दीपक में माता के चित्र होने से यह अत्यंत पवित्र माना जाता है। कामाक्षी दीप को प्रज्वलित करने से पहले उसे हल्दी और कुंकुम से पूजा करके फूल चढ़ाकर प्रणाम करना चाहिए। विश्वास किया जाता है कि हर दिन कामाक्षी दीप जलाने से सकल ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

365 बत्तियों का दीप :

हर दिन प्रातः और संध्या को भगवान के सामने दीप को प्रज्वलित करना हिंदू संप्रदाय का एक रिवाज है। कभी-कभी किसी कारणवश दीप नहीं जलाने पर तथा दीप को जलाते समय होनेवाले दोषों के निवारणार्थ, और हर दिन दीप जलाने के पुण्य को प्राप्त करने के लिए साल में एक दिन अर्थात कार्तिक पूर्णिमा

के दिन गाय के घी के 365 बत्तियों के दीप को जलाते हैं। पूरा दिन उपवास रहकर शाम को 365 बत्तियों के दीप को एक केले के पत्ते में रखकर नदी में बहा दिया जाता है।

एक लाख बत्तियों का व्रत :

ब्रह्मांड पुराण में एक लाख बत्तियों के व्रत के बारे में उल्लेख मिलता है। कार्तिक मास में इस व्रत का आचरण किया जाता है। सबसे पहले इस व्रत का संकल्प करके ब्राह्मणों द्वारा विधि-विधान के अनुसार बंधु-मित्रों समेत इस व्रत का आचरण किया जाता है। इस व्रत के आचरण से नित्य पूजा करते समय स्त्रियों द्वारा अनजाने हुए दोषों से मुक्ति मिलती है। दीप जलाते समय मंत्रपुष्प का पाठन और नारायण नाम स्मरण किया जाता है।

आकाशदीप :

मंदिरों में संध्या समय में आकाशदीप को प्रज़्वलित किया जाता है। एक ऊंचे स्तंभ पर इस दीप को रखते हैं, जो आध्यात्मिक रूप से विशिष्ट है। माना जाता है कि जो व्यक्ति भक्ति से आकाशदीप प्रज़्वलित करता है, उन्हें कभी भी अकाल मृत्यु नहीं होती, और जो लोग अपने पितरों के लिए आकाश दीपोत्सव करते हैं, उनके पितर उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। आकाशदीप शास्त्रीय रूप से भी सम्मत हैं, क्योंकि वर्षा काल के बाद पानी में अनेक कीडे उत्पन्न होते हैं। साधारणतया मंदिर गाँव के एक कोने में निर्मित किए जाते थे। मंदिर के ऊपर

आकाशदीप से कीटादि आकर्षित होकर गाँव में नहीं पहुँचते थे। इस प्रकार लोग स्वस्थ रहते थे।

दीपों के विविध नाम :

विविध स्थानों पर आराधना किए जाने वाले दीपों का अलग-अलग नाम है - घर में पूजा करते समय करनेवाली दीपाराधना 'व्यष्टि'; तुलसी के सामने की जानेवाली आराधना 'बृंदावन'; भगवान को विशेष रूप से की जानेवाली दीपाराधना 'अर्चना'; नित्य पूजा में जलानेवाला छोटा दीप 'निरंजना'; मंदिर के गर्भगृह के दीप 'नंदादीप'; लक्ष्मी मंदिर में प्रज्वलित दीप 'लक्ष्मीदीप'; मंदिर के प्रांगण में बलिपीठ पर प्रकाशित दीप 'बलिदीप'; उसके समीप ऊंचे स्तंभ पर प्रकाशित किए जाने वाला दीप 'आकाशदीप' कहलाते हैं।

कार्तिक मास में दीपाराधना तथा महत्व :

दीपावली के अगले दिन से कार्तिक मास शुरू होता है। कार्तिक मास की विशिष्टता दीपादान है। भगवान के सामने प्रज्वलित दीप को रखकर भक्ति पूर्वक पूजा करना दीपादान है। अग्निपुराण में बताया गया है कि- ''दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति।''

अर्थात्-दीपदान से बढ़कर पूर्व भी कुछ नहीं नही था, और भविष्य में कुछ नहीं होगा।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान शिव ने त्रिपुरासुर का वध किया था। इस विजयोत्सव पर देवों ने दीपोत्सव मनाया था। इससे कार्तिक पूर्णिमा 'देव दीपावली' भी कहा जाता है। कार्तिक

पूर्णिमा के दिन शिव मंदिर में दीप आराधना करना तीन करोड़ देवताओं की पूजा करने के समान माना जाता है।

पुराणों में उल्लेख है कि भगवान विष्णु आषाढ़ शुक्ल एकादशी को योग निद्रा में चले जाते हैं। चार महीनों के बाद कार्तिक एकादशी को जाग उठते हैं। इससे कार्तिक एकादशी 'उत्थान एकादशी' भी कहा जाता है। इस दिन भगवान विष्णु की पूजा करके दामोदर दीप को प्रज्वलित करने से भगवान की कृपा बनी रहती है; माँ लक्ष्मी की कटाक्ष से धन संपदा का सौभाग्य प्राप्त होगा। अतः कार्तिक मास हरि और हर दोनों का पवित्र मास है और इससे कार्तिक मास को 'न कार्तिके समो मासो' तथा 'मासानां कार्तिकं श्रेष्ठो देवानां मधुसूदनः' कहा गया है। इस पवित्र मास में शिव और विष्णु के मंदिरों में विशेष रूप से दीपों को प्रज्वलित किया जाता है, और भगवान का विशेष अलंकार तथा पूजा की जाती है।

उत्थान द्वादशी को 'क्षीराब्धि द्वादशी' भी कहा जाता हैं। विश्वास किया जाता है कि इस दिन को देव दानवों ने क्षीर सागर का मंथन किया था। इस दिन स्त्रियाँ घरों में तुलसी पौधे के साथ आंवले वृक्ष की शाखा को रख के पूजा करती है। तुलसी के सामने आंवले के दिए जलाए जाते हैं। इस पूरे मास में शाम के समय दीपों को जलाया जाता है।

माना जाता है कि कार्तिक मास में मंदिर, नदी-तीर, घर और चौराहों पर दीपदान करने से पाप मिट कर अनेक प्रकार के शुभ, लाभ तथा मुक्ति मिलती हैं। जैसे ऊपर वर्णन किया गया है कि इस कार्तिक पूर्णिमा को 365 बत्तियों की पूजा और एक लाख बत्तियों के व्रत का संकल्प करके दीपों को प्रज्वलित किया जाता है, ताकि अनजाने किये दोषों से मुक्त मिल सके और एक साल दीपों को जलाने का पुण्य प्राप्त हो सके।

कार्तिक मास में दीप को जलाना शास्त्रीय सहमत भी है; कारण यह है कि कार्तिक मास वर्षा काल के बाद आता है। बारिश से चारों ओर पानी होने से अनेक कीड़े उत्पन्न होते हैं। दीप प्रज्वलन करने से कीडे दीप कांति से आकर्षित होते हैं; गाँव के अंदर अथवा घर के अंदर वे कीड़े नहीं आते हैं। इस प्रकार से पुराने जमाने में कार्तिक मास में दीपों को जलाने की परंपरा शुरू हुई। कार्तिक मास में शाम को जल्दी ही अंधकार छा जाता है। मौसम ठंडा पड़ना शुरू होता है। इससे शीत, बुखार और चर्म से संबंधित अनेक रोग शुरू होते हैं। इनसे बचने के लिए वातावरण को कुछ गरम रखने के लिए दीपों को प्रज्वलित किया जाता था। इन कीड़ों को रोकने के लिए घर के देहली पर तथा तुलसी पौधे के पास दीप जलाएँ जाते हैं। इससे कार्तिक मास में केवल सोमवार, एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा के अलावा पूरा महीना जप-तप के साथ नियमों का पालन करते हुए दीप को प्रज्वलित करना एक पारंपरिक रिवाज बन गया है, जो शुभ माना जाता है।

कार्तिक मास में दीप महत्व के बारे में कहा गया है कि-

शुभं करोति कल्याणंमारोग्यं धनसंपदा।

शत्रुबुद्धिविनाशाय दीपज्योतिर्नमोऽस्तुते।।

उस दिव्य ज्योति को प्रणाम, जो शुभ, कल्याण करनेवाली है; जो स्वास्थ्य, धन-सम्पदा प्रदान करने वाली है तथा शत्रुओं का विनाश करती है।

मन का तन पर प्रभाव

- श्री अंकुश्री
मोबाइल - ८८०९९७२५४९

मन का तन से गहरा संबंध है। इसलिये मन पर पड़े प्रभाव का असर तन पर तुरंत दिखाई देता है। यह असर आम आदमी भी महसूस कर सकता है। जब किसी के द्वारा खुशी की बात सुनाई जाती है तो हृदय में स्पंदन होता है और तन में स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है। ठीक इसी तरह दुख भरा समाचार सुनने पर भी हृदय में स्पंदन तो होता है, मगर उससे तन में स्फूर्ति नहीं आती, बल्कि शिथिलता आ जाती है। यह आम आदमी के लिये अनुभूत और प्रमाणित तथ्य है कि समाचार सुखद हो या दुखद, तन पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। समाचार चाहे जैसा भी हो, सुनने और देखने के बाद मन ही उसे हृदय तक पहुँचाता है। हृदय हमारे तन का प्रमुख अंग है। इसीलिये कहा जाता है कि मन से तन प्रभावित होता है।

हृदय हमारे तन का महत्वपूर्ण अंग अवश्य है, मगर यह कुछ देखता या सुनता नहीं है। इसे सिर्फ हर दुखद या सुखद घटना की अनुभूति होती है, जिससे यह प्रभावित होता है। हृदय को दुखद या सुखद घटना की अनुभूतियों से प्रभावित करने का काम मन करता है। यह बहुत गंभीर विषय है कि मन पर जिन अनुभूतियों का असर नहीं होता है, उनसे हृदय प्रभावित नहीं होता। जब किसी बाहरी या आंतरिक अनुभूति से हृदय प्रभावित नहीं होता है तो तन पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मन के हृदय पर प्रभाव का यह सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है। इससे तन की सारी विशेषाएँ जुड़ी हुई हैं।

मन में उत्पन्न सोच के सुखद और दुखद पहलुओं का तन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि स्वस्थ व्यक्ति भी अस्वस्थ हो सकता है और अस्वस्थ व्यक्ति भी स्वस्थ हो जा सकता है। सुखद सोच और दुखद सोच के बीच एक अदृश्य और अति महीन रेखा खिंची हुई है। यह महीन रेखा व्यक्ति के ज्ञान और अनुभव के तार से जुड़ी हुई है। अधिकतर लोग जानते हुए भी मन के अनुसार चलने लगते हैं, जिसके कुप्रभाव से ग्रसित होकर उन्हें तरह-तरह की परेषानियाँ झेलने के लिये मजबूर होना पड़ता है। वस्तुतः मन के बहकावे से निकल पाना बहुत आसान काम नहीं है। मन पर जिसका नियंत्रण हो जाता है, उसे ही मुनि कहते हैं। सिर्फ साधु-संन्यासी ही

मुनि नहीं होते। आम आदमी भी मुनि जैसा जीवन जी सकता है। सच कहा जाये तो मन को नियंत्रण में रखना बहुत बड़े अभ्यास का परिणाम है, जो सबके बूते की बात नहीं है। मन पर जिसका नियंत्रण रहता है, वह बहुत सारा मनचाहा काम कर लेता है। आम तौर पर लोग मन के भटकाव और उस पर नियंत्रण के अभाव के कारण छोटी-छोटी बातों में उलझ कर अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते हैं। लक्ष्य का निर्धारण भी मन की स्थिति है। नियंत्रण के अभाव और भटकाव की स्थिति में लक्ष्य का चयन नहीं हो पाता। जब लक्ष्य ही निर्धारित नहीं होगा तो उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास नहीं किया जा सकेगा और तब अधिक संभावना है कि जीवन निरुदेश्य और निर्रथक होकर रह जाये।

स्थूल तन और उसकी गतिविधियाँ सर्व दृष्यमान हैं। मगर तन की तरह हृदय को खुले में नहीं देखा जा सकता। चिकित्सकीय यंत्रों के सहयोग से हृदय, उसकी आंतरिक बनावट और गतिविधियाँ देखी जा सकती हैं। उसकी आंतरिक गतिविधियाँ तन को हर क्षण प्रभावित करती हैं। मगर हृदय की गतिविधियों को बाहरी तौर पर नहीं देखा-परखा जा सकता है। सभी का हृदय स्पंदित होते रहता है। हृदय का स्पंदन ही जीवन की पहचान है। इसे धड़कन भी कहते हैं। हृदय के धड़कने की गति को निर्धारित है, जो हर मनुष्य के लिये एक समान नहीं है। यह उम्र, स्वास्थ्य और बाहरी परिस्थितियों के साथ ही आंतरिक अनुभूतियों के कारण बदलती रहती है। हृदय के धड़कने का सीधा संबंध स्वास्थ्य और परिश्रम पर निर्भर है। अस्वस्थता की स्थिति में हृदय की धड़कन बदलती रहती है। अधिक मेहनत करने पर हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। कभी-कभी बिना कोई श्रम किये भी हृदय जोर-जोर से धड़कने लगता है। ऐसा मन के कारण होता है। मन के कारण हृदय धड़कने की गति में जो परिवर्तन आता है, वह मन की चंचलता और हृदय की ग्राह्यता पर निर्भर करता है।

सोचने का काम मन करता है और सोच का सीधा असर हृदय पर पड़ता है, जो उसके स्पंदन के रूप में महसूस किया जाता है। मन के संचालन के लिये तन को गतिशील नहीं होना पड़ता। आराम से बैठे-बैठे भी मन सोच सकता है, जिसका असर हृदय की गति पर पड़ सकता है। हृदय की गति बढ़ने से तन में व्यग्रता आ जाती है। बैठे या सोये व्यक्ति को भी मन में उत्पन्न सोच के कारण इतनी बेचैनी बढ़ सकती है कि वह पसीना से तर-बतर हो जाये। सिर्फ मन के सोचने से कोई आदमी हंस या रो सकता है, दौड़ या बैठ सकता है, खुशी से पागल हो सकता है या दुख से कातर भी। अदृश्य मन का प्रभाव दृश्यगत हो जाता है।

हम दुख-सुख, गरीबी-अमीरी, ऊंच-नीच, भेद-भाव आदि के बारे में जो भी सोचते हैं, वह मन की देन है। ईश्वर को देख पाना संभव नहीं होने पर भी हम उसकी सत्ता को मानते और स्वीकारते हैं। उसी तरह मन दिखाई नहीं देता फिर भी उसके कारण उत्पन्न प्रभाव का अनुभव किया जाता है।

मन में भावनाएँ पैदा होती हैं और वे हृदय तक पहुँच जाती हैं। ऐसा देखा गया है कि भावनाओं को ग्रहण करने की क्षमता सबके हृदय में एक जैसी नहीं होती। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि भावनाओं को सभी एक जैसी नहीं लेते हैं। कुछ लोगों का हृदय सूक्ष्मग्राही होता है, जो तुरंत किसी बात से प्रभावित हो जाता है। ऐसे लोगों को हम अति भावुक कहते हैं। कुछ लोग भावनाओं से हल्का-फुल्का प्रभावित होते हैं। ऐसे लोग भावुक तो होते हैं, मगर भावुकता में बह नहीं जाते। कुछ लोगों पर भावनाओं का प्रभाव ही नहीं

पड़ता। ऐसे लोगों के सामने चाहे जितना भी दुख रोया जाये, वे निष्ठुरता पूर्वक चुपचाप उसे सुनते रहते हैं। दुखद ही नहीं, सुखद बातों से भी उन्हें बहुत अंतर नहीं पड़ता। वे भावनात्मक बातें सुन कर द्रवित नहीं होते। सुखद या दुखद अनुभूतियों को वे गहराई से महसूस नहीं कर पातें। ऐसे लोगों को हम बोलचाल की भाषा में कठोर हृदय वाला कहते हैं। भावुक लोग मन में उत्पन्न भावना से आवेषित हो जाते हैं और उनका हृदय विशेष गति से काम करने लगता है।

भावनाएँ दुखद भी हो सकती हैं और सुखद भी। जिस दुख या सुख से भावनाएँ प्रभावित होती हैं, वह निजी हो सकता है अथवा दूसरे का भी। निजी दुख से उत्पन्न भावनाएँ अधिक दुखदायी होती हैं। भावुक व्यक्ति के साथ यह विसंगति है कि उसकी दुखद भावनाएँ जल्दी समाप्त नहीं होतीं। वह अपने दुख के बारे में सोचते रहता है और इसी क्रम में और दुखित होते जाता है। उसका दुख मन से आकर हृदय के किसी कोने में अपना स्थान बना लेता है। हमें पता है कि दुख के बारे में सोचते रहने से वह बढ़ते जाता है, घटता नहीं है। दुखद भावनाओं के जमा रहने से मन हमेशा दुखित रहने लगता है। दुख का प्रभाव बढ़ने से ऐसा हो जाता है कि उस व्यक्ति को हर बात में दुख ही दुख दिखाई देने लगता है। यह स्थिति व्यक्ति को आगे बढ़ने से रोकता है और इसका प्रभाव परिवार के अन्य सदस्यों पर भी पड़ता है। दुख से घिरे व्यक्ति की स्थिति विकास के सर्वथा प्रतिकूल होती जाती है। यह स्थिति उसे पग-पग पर आगे बढ़ने से रोकती है और व्यक्ति नित्य नई कठिनाइयों से घिरते जाता है। इसलिये मन में किसी दुख या विपदा के कारण उत्पन्न भावना को स्थान देकर उसे संप्रेषित नहीं करना चाहिये। बल्कि सुखद और अन्य भावनाओं से उसे प्रतिहस्तांतरित कर देना चाहिये। स्वाध्याय और सत्संग से यह काम बहुत आसानी से संभाव है। सत्संग का तात्पर्य सिर्फ ऋषि-मुनियों का प्रवचन नहीं है। अच्छे लोगों और घर-परिवार के सदस्यों से किसी अच्छे और सार्थक विषय पर बातें करने से भी मन को धनात्मक ऊर्जा मिलती है, जो हृदय में उत्पन्न दुख को समाप्त या कम करने में बहुत सहायक होती है।

दुखद मनःस्थिति में रहने और जीने से चारों तरफ दुख ही दुख दिखाई देता है। ठीक इसके विपरीत सुखद मनःस्थिति में रहने और जीने से चारों तरफ उत्साह ही उत्साह नजर आता है। उत्साहित मन से काम करने पर विकास-मार्ग की बाधाएँ दूर हो जाती हैं और लक्ष्य तक पहुँचना आसान हो जाता है। इसलिये मन को प्रस्फुटित रख कर उसे जीवन की सुखद नदी में तैराना चाहिये, न कि दुखित रह कर भंवर-जाल में फंसना चाहिये।

स्वार्थी व्यक्ति अपने बारे में सोचता है। उसे सिर्फ अपना दुख दिखाई देता है और दूसरे के सुख से उसे ईर्ष्या होती है। ऐसी व्यक्ति के मन पर दूसरे के दुख का प्रभाव नहीं पड़ता। एक बात और है कि आम तौर पर वे केवल अपने दुख की बात करते हैं, सुख की नहीं। उनके मन में सिर्फ अपना दुख घूमते रहता है। उसके समक्ष जब कोई दूसरा व्यक्ति अपने दुख की बात अथवा याचना करता है तो वह उससे प्रभावित होने के बजाय अपने दुख का रोना रोने लगता है। मदद करने के बजाय वह याचना करने लगता है। किसी दुखी की मदद करना अच्छी बात है, मगर दुख का रोना रोने वाले से हमेशा दूर रहना चाहिये। ऐसे व्यक्ति की मदद करने से मन पर कुप्रभाव पड़ता है और विकास बाधित होता है।

बात-चीत में हम ऐसा कहते या सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति का अमुक व्यक्ति से भावनात्मक संबंध है। यह भावना मन की उपज है। यह आवश्यक नहीं है कि

भावनात्मक संबंध दो भावुक व्यक्तियों के बीच ही हो। कोई भावुक व्यक्ति दूसरे की भावनाओं में बह कर उससे भावनात्मक संबंध बना सकता है। यह भी संभव है कि दूसरा व्यक्ति भावुक स्वभाव का नहीं हो, सिर्फ दूसरे को भावविह्वल करने के लिये अपनी भावना दिखाता हो। समाज में बहुत से लोग अपनी चालाकी और धूर्तता के बल पर दूसरों से भावनात्मक संबंध बना कर उन्हें मूर्ख बनाते हैं या बनाने की प्रयत्न करते हैं। भावना में बह कर बहुत से लोग ठगी के शिकार हो जाते हैं। ठगी का धंधा ही दूसरे के मन में भावनात्मक लगाव और विश्वास उत्पन्न करना है। ठगी सिर्फ क्रय-विक्रय तक ही सीमित नहीं है। यह किसी भी रूप में हो सकती है। धर्म, बीमारी, बेरोजगारी या अन्य लाचारी के नाम पर भी ठगी की जाती है। बहुत से लोग अधिक लाभ कमाने या किसी लोभवष ठगी का षिकार हो जाते हैं। ठगाना उस समय की मनःस्थिति पर निर्भर करता है। व्यक्ति को जब पता चलता है कि वह ठग लिया गया है तो उस घटना का असर मन से निकल कर उसके हृदय पर पड़ जाता है।

अदृश्य मन से ही सोच निकलती है। सोच भी अदृश्य होती है। मन और सोच से ही दुनिया की सारी गतिविधियाँ संचालित और संचरित होती हैं। इसलिये मन को नियंत्रण में रखना बहुत आवश्यक है। इसके लिये ऋषि-मुनियों ने ध्यान की परंपरा विकसित की हुई हैं। ध्यान से मन का भटकाव रुकता है और उसे ऐच्छिक दिशा में मोड़ने की शक्ति मिलती है। लगनशीलता बहुत लोगों में होती है। वे मेहनत भी खूब करते हैं। मगर मन की चंचलता को रोकने में सक्षम व्यक्ति ही अपने अनुसार और सही काम पर पाता है। चैराहे पर खड़े व्यक्ति के लिये यह दुविधापूर्ण स्थिति होती है कि वह किस दिशा में जाये। दिशा तय होते वह गतिशील हो जाता है और आसानी से लक्ष्य तक पहुँच जाता है। मन का भटकाव भी चैराहे की तरह होता है। जो इस भटकाव से उबर कर एक विषय को पकड़ लेता है, उसे जीवन की सफलता हासिल हो जाती है और वह मन से प्रस्फुटित और तन से स्वस्थ रहता है।

मन अथवा उसमें उत्पन्न विचार को दिशा देना बहुत आसान काम नहीं है। मनोनुकूल काम नहीं हो पाने से किसी-किसी के मन को बहुत चोट लगती है। कुछ लोग इतने चोटिल हो जाते हैं कि उनकी मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है और वे पागल तक हो जाते हैं। हालांकि पागलपन का कारण सिर्फ मानसिक आघात लगना नहीं होता। बीमारी आदि दूसरे कारणों से भी कोई पागल हो सकता है। पागलपन चाहे जिस कारण से हो, उसका उपाय मनोचिकित्सक द्वारा ही हो पाता है। मन और उससे उत्पन्न स्थितियों के लिये एक विज्ञान बना हुआ है, जिसे मनोविज्ञान कहते हैं। मनोवैज्ञानिक बातचीत और व्यवहार से रोगी की स्थिति को भांप लेते हैं और तदनुसार उनकी चिकित्सा करने का प्रयास करते हैं। मन की चिकित्सा तन के माध्यम से ही होती है।

जिस तरह किसी व्यक्ति के मन पर लगे आघात का प्रभाव उसके हृदय पर पड़ता है, उसी तरह मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति का मस्तिष्क खराब हो जाता है, जिसे हम पागल कहने लगते हैं। हृदय और मस्तिष्क हमारे तन के अंग हैं। मन में सोची गयी बातों का ही तन द्वारा क्रियान्वयन किया जाता है। मन की शिथिलता का असर शरीर के दूसरे अंगों पर भी पड़ता है। मन को नियंत्रित रखने तन पर साकारात्मक प्रभाव पड़ता है और जीवन खुशहाल रहता है।

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(षष्टम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि. तापडिया
मोबाइल - ९४४९५१७८७९

११२

श्रीमते रामानुजाय नमः

“अन्तकाले तु मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।”
“यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः।।”

इन दोनों श्लोकों का वही भाव है जो कि पहले कह चुके हैं। मध्य में अर्जुन जी ने एक बार भगवान से पूछा था कि भगवान! आप तो कहते हैं कि मन को वश किये बिना कर्मयोग सिद्ध नहीं होगा। परन्तु :-

“चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।”

मन तो बहुत ही चञ्चल है, दुःख देने वाला है और हद्द से ज्यादा बलवान है। जैसे वायु का रोकना असम्भव है उसी प्रकार मन को भी वश करना महा अशक्य है। अर्जुन जी के वचन को सुनकर भगवान भी यही कहे कि अर्जुन! यह संशय रहित बात है। मन बहुत चञ्चल है, इसको वश में करना बड़ा मुश्किल है। परन्तु साधनस्वरूप कर्म, ज्ञान, भक्तियोग के बल से तरने की इच्छा करने वालों को चाहिए कि पूर्ण अभ्यास से और प्रबल वैराग्य के बल से इसको अवश्य वश करें।

सावधान पूर्वक साधन योग को करता हुआ भी अधिकारी यदि कभी मन के झपेटे में आ जायगा तो उसका साधन सिद्ध नहीं होगा। उसे संसार में जन्म लेना पड़ेगा। हाँ! किसी साधन योग वाले के कुल में जन्म पाकर फिर भी पूर्वाभ्यास से अपने साधन को सिद्ध करने में प्रवृत होगा। इस प्रकार अनेक जन्मों तक करता-करता जब कभी उसका साधन सिद्ध होगा तभी परमगति को जायेगा। यह सब जिम्मेदारी उस साधन योग को करने वाले अधिकारी पर है।

इस प्रकार अट्ठारह अध्यायों में भगवान के श्रीमुख से अर्जुन जी ने ज्ञान सुना। बाद श्री भगवान ने यह भी कहा कि “यथे-च्छसि तथा कुरु” सब साधन करने की जिम्मेदारी अर्जुन जी के ऊपर ही रख दिये “यथेच्छसि तथा कुरु” इसको कहकर भगवान चुप बैठ गये। अर्जुन जी भी मौन धारण कर सोचने लगे कि मैं कौन सा साधन करूँ। यदि कर्मयोग पर परिस्थिति करूँ तो भगवान के श्रीमुख से कहा हुआ है कि “गहना कर्मणो गतिः” याने कर्म की गति बड़ी दुर्ज्ञेय है और उसमें कवि लोग भी मोहित हो जाते है। जब कर्म की गति दुर्ज्ञेणो है, उसका पूर्ण स्वरूप ही जानना मुश्किल है फिर पूर्णरूप से कर कैसे सकेंगे। यदि किसी प्रकार साहस करके इसमें प्रवृति करना चाहें तो श्रीमुख आज्ञा है कि मन वश किये बिना कर्मयोग सिद्ध ही नहीं हो सकता। इसमें मन वश करने का अड़ंगा पहले रखा है। यदि मन वश करने चलें तो श्री भगवान के श्रीमुख से ऐसा हुआ है कि यह मन चञ्चल है और निःसन्देह दुर्निग्रह है। यदि इसको वश करने का उपाय करें तो श्रीमुख से आज्ञा हुई है कि :-

“प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।”

जिसकी जैसी प्रकृति पड़ गई है उसी तरफ उसका खिंचाव होगा। तो हम तो मन वश करने का अभ्यास करने

चलें और बीच में न जाने प्रकृति किधर खिंचाव कर दे। मन वश करके किसी प्रकार दो चार वर्ष साधन योग को सिद्ध करने में भी लगें फिर भी किसी तरह मन के झमेले में पड़ जाय तो मुक्ति न होकर फिर दुनियाँ में जन्म लेना पड़े। यदि आगे जन्म की आशा लेवे तो किस भरोसे पर। वहाँ भी मन तो साथ ही रहेगा। खुद श्रीमुख से आज्ञा हुई कि ''अनेक जन्म संसिद्धः'' जब कि अनादि से आज तक असंख्य जन्म बीत चुके और मुक्त मिलने का ठिकाना नहीं हुआ फिर आगे का क्या ठिकाना। भगवान के श्रीमुख से ही जब अनेक जन्म बताया जा रहा है तो अनेक जन्मों की बारी कब आयेगी इसका क्या पता। मन, इन्द्रियां ये सब साधन योग के सिद्ध होने में बाधक हैं। ये एक से एक अति प्रबल हैं। इन दुष्टों का प्राबल्य देखते हुए साधन योग हमारे द्वारा सिद्ध होगा इस बात पर किसी तरह भरोसा आता ही नहीं है। यह तो हुआ कर्मयोग का चक्र व्यूह। यदि कहें कि इसको छोड़कर ज्ञानयोग से आत्मा का कल्याण कर लेवें तो श्रीमुख की आज्ञा है कि :-

''तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि बिन्दति''

जिसका कर्मयोग सिद्ध ही नहीं हुआ है उसे ज्ञानयोग प्राप्त नहीं हो सकता। शास्त्रों में ज्ञानयोग को भी मुक्ति का साधन बताया है। जैसे ''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। परन्तु उसमें भी सख्त नियम यह है कि:-

''नाबिरतो दुश्चरितात्प्रज्ञाने नैनमाप्नुयात''

जब तक साधक में लेश मात्र भी दुश्चरित्र रहेगा तब तक कितना भी ज्ञान कहा सुना करे परन्तु उसकी मुक्ति नहीं होगी। शास्त्रों की यह सख्त आज्ञा है कि पहले मन, वचन, कर्म से दुश्चरित्रों को छोड़ दे उसके बाद ज्ञानयोग का साधन करे। ज्ञानयोग का भरोसा लेने में बड़ी-बड़ी रुकावटें पड़ी हुई हैं। दुश्चरित्र को त्यागे बिना ज्ञानयोग से कुछ लाभ नहीं होगा और जिसका मन तथा इन्द्रियाँ काबू में नहीं हैं वह अधिकारी किस तरह मन, वच, कर्म से दुश्चरित्रता से बच सकता है इसको परमात्मा ही जाने। इससे इस ज्ञानयोग के भरोसे पर भी आत्मा का कल्याण होना महा असम्भव सा दीख रहा है। अब रहा साधन स्वरूप भक्तियोग का प्रसंग उसके बाबत भगवान के श्रीमुख से आज्ञा हुई है कि जो हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग आदि से रहित है ऐसा भक्त हमारा प्रिय है। इस नियम के अनुसार भी भगवान का प्रिय बनना बड़ा मुश्किल है क्योंकि दुनियाँ में ऐसा कौन चेतन है कि इन चारों दुर्गुणों से रहित है। हर्ष, ईर्षा, भय, उद्वेग तो रात-दिन आत्मा के पीछे पड़े हुए हैं। किसी प्रकार इन दुर्गुणों से छूटने का प्रयास भी करे तो सिर्फ उतने ही से काम नहीं चल सकता। क्योंकि साधन स्वरूप भक्तियोग बल से तरने की इच्छा करने वाले अधिकारियों के लिए भगवान की तरफ से ही यह सख्त शर्त रखी हुई है कि:-

''अन्तकाले तु मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरं।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमांगतिम्॥''

मरते समय मेरा ही स्मरण करता हुआ जो भक्तियोग निष्ठाधिकारी शरीर छोड़ेगा उसीको परमगति की प्राप्ति होगी। यदि ऐसा नहीं हुआ और कहीं दूसरी जगह चित्त चला गया तो फिर वहाँ ही उसको जन्म लेना पड़ेगा जैसे जड़भरतजी का हुआ।

क्रमशः

ऋषि-मुनि

महर्षि अत्रि

- डॉ.जी.सुजाता
मोबाइल-८१८५८७११३०

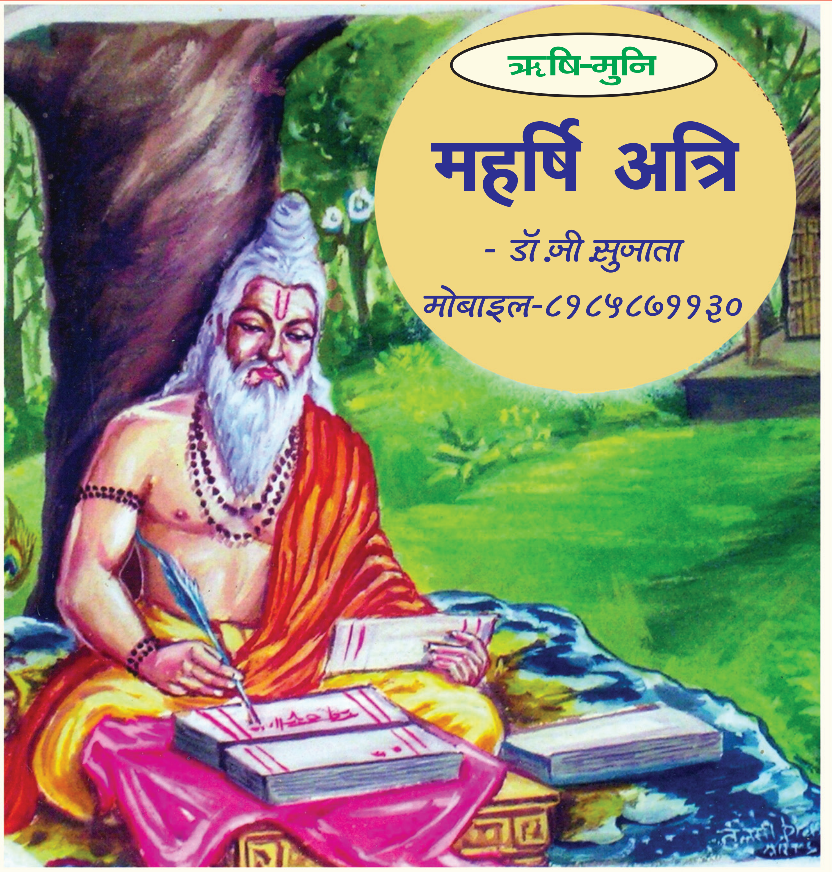

हिन्दू धर्म में वेदों का अधिक महत्व है। चारों वेदों में हजारों मन्त्र है और इन मन्त्रों की रचना ऋषियों ने की है। भारतीय ऋषियों और मुनियों ने ही इस धरती पर धर्म, समाज, नगर, ज्ञान, विज्ञान, खगोल, ज्योतिष, वास्तु, योग आदि ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया था। उन्होंने मानव मात्र के लिए ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी, समुद्र, नदी, पहाड़ और वृक्षों सभी के बारे में सोचा और सभी के सुरक्षित जीवन के लिए कार्य किया। हिन्दू पुराणों ने काल को मन्वंतरों में विभाजित कर प्रत्येक मन्वंतर में हुए ऋषियों के ज्ञान और उनके योगदान को परिभाषित किया है। मन्वन्तर यानी कि मनु+अंतर, एक ऐसा समय जो एक मनु के जीवन की व्याख्या करता है। सृष्टि के रचयिता भगवान ब्रह्म द्वारा अपने संकल्प से मनु का निर्माण किया गया था। मनु ने ही अपनी समझ से इस संसार को बनाया, इसके भीतर रहने वाले जीव बनाए। इन सबकी रचना करते हुए मनु जितने साल जीवित रहे उस प्रत्येक काल को मन्वन्तर कहा गया है। जैसे ही एक मनु की मृत्यु हुई तो ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि को चलाने के लिए दूसरे मनु की रचना की गई। प्रत्येक मन्वंतर में प्रमुख रूप से 7 प्रमुख ऋषि हुए हैं। इन्हीं मन्वन्तरों के आधार पर विभिन्न ऋषियों का उल्लेख किया गया है जिन्हें सप्तर्षि तारा मण्डल में स्थान हासिल है। वेदों में सप्तऋषियों को वैदिक धर्म का संस्थापक माना गया है। सप्तऋषि वास्तव में एक अनुक्रम में कार्य करते रहे और उसी तरह सप्तऋषि के अलग-अलग समूह ने मानव की हर पीढ़ी का मार्गदर्शन किया। वेदों में जिन सात ऋषियों या ऋषि कुल के नामों का पता चलता है, वे वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, भारद्वाज, अत्रि, वामदेव और शौनक के नाम से हैं। इन्हीं सातों ऋषियों से तारामंडल के सात तारों को जोड़ा जाता है। माना जाता है कि यह ऋषि या इन्हीं के वंशज भी आगे सप्तर्षि तारा मण्डल का हिस्सा बने। पुराणों में भी सप्तऋषि मण्डल के सात ऋषियों की नामावली शामिल की गई है। हालांकि पुराणों में ऋषियों के नाम में कुछ भेद दिखते हैं। विष्णु पुराण में मन्वन्तर का हवाला देते हुए जिन सात ऋषियों का वर्णन है, उनके नाम हैं - वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भारद्वाज। वर्तमान सप्तऋषि समूह में शामिल ऋषियों के नाम - कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज हैं।

महर्षि अत्रि

सप्तर्षियों में महर्षि अत्रि की गणना होती है। वैवस्वत मन्वन्तर में अत्रि एक प्रजापति थे। मुनि अत्रि ब्रह्म के मानस पुत्र थे जो ब्रह्मा जी के नेत्रों से उत्पन्न हुए थे। अनेक धार्मिक ग्रंथों में इनके आविर्भाव तथा चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। अत्रि हिन्दू परंपरा में सप्तर्षि (सात महान वैदिक ऋषियों) में से एक है, और सबसे अधिक ऋग्वेद में इसका उल्लेख है। सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के ऋषि अलग-अलग हैं। उनमें से ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिये यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में 87 सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रि द्वारा विशेष रूप से अग्नि, इन्द्र, मरूत, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवों की महनीय स्तुतियाँ ग्रंथित हैं।

इन्होंने कर्दम प्रजापति और देवहुति की पुत्री अनसूया से विवाह किया था जो एक महान पातिव्रत्य के रूप में विख्यात हुई हैं। देवी अनसूया जी के पातिव्रत्य के आगे सभी नतमस्तक हुआ करते थे। इनके ब्रह्मवादिनी नाम की कन्या थी।

महर्षि अत्रि ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के मूर्तिमान स्वरूप हैं; वह गुणातीत थे। तीनों गुणों सत्त्व, रजस, तामस गुणों से परे थे। देवी अनसूया पातिव्रत्य धर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। उन्होंने अपने पातिव्रत्य के बल पर शैव्या ब्राह्मणी के मृत पति को जीवित कराया तथा बाधित सूर्य को उदित कराकर संसार का कल्याण किया। महर्षि अत्रि दम्पति सदाचार का जीवन व्यतीत करते हुए चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इन दम्पति को ब्रह्मा जी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो इन्होंने सृष्टिवर्धन करने से पहले तपस्या करने का निश्चय किया और पुत्रोत्पत्ति के लिए ऋक्ष पर्वत पर पत्नी के साथ घोर तपस्या की। इनकी तपस्या से ब्रह्म, विष्णु, महेश ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिए और उन दम्पति की प्रार्थना पर उनका पुत्र बनना स्वीकार किया। अत्रि-दम्पति की तपस्या और त्रिदेवों की प्रसन्नता के फलस्वरूप विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्म के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा, महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूया के पुत्र रूप में आविर्भूत हुए।

इस तथ्य पर एक कथा आधारित है- इनके जीवन को देख कर देवता भी प्रसन्न होते थे जब एक बार देवी लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती को ऋषि अत्रि की पत्नि अनसूया के दिव्य पातिव्रत्य के बारे में ज्ञात होता है तो वह उनकी परीक्षा लेने का विचार करती हैं और तीनों देवियाँ अपने पतियों भगवान विष्णु, शंकर व ब्रह्म को अनसूया के पातिव्रत्य की परीक्षा लेने को कहती हैं। विवश होकर त्रिदेव अपने रूप बदलकर एक साधू रूप में ऋषि अत्रि के आश्रम जाते हैं और अनसूया से भिक्षा की मांग करते हैं। पर वह एक शर्त रखते हैं कि भिक्षा निर्वस्त्र होकर देनी पड़ेगी इस पर देवी अनसूया धर्मसंकट में फँस जाती हैं, यदि भिक्षा न दी तो गलत होगा और देती हैं तो पातिव्रत्य का अपमान होगा। अतः वह उनसे कहती हैं की वह उन्हें बालक रूप में ही यह भिक्षा दे सकती हैं तथा हाथ में जल लेकर संकल्प द्वारा वह तीनों देवों को शिशु रूप में परिवर्तित कर देती हैं और भिक्षा देती हैं। इस प्रकार तीनों देवता ऋषि अत्रि के आश्रम में बालक रूप में रहने लगते हैं और देवी अनसूया माता की तरह उनकी देखभाल करती हैं। कुछ समय पश्चात जब त्रिदेवियों को इस बात का बोध होता है तो वह अपने पतियों को पुनः प्राप्त करने हेतु ऋषि अत्रि के आश्रम में आती हैं और अपनी भूल के लिए क्षमा

याचना करती हैं। ऋषि अत्रि के कहने पर माता अनसूया त्रिदेवों को मुक्त करती हैं। अपने स्वरूप में आने पर तीनों देव, ऋषि अत्रि व माता अनसूया को वरदान देते हैं कि वह कालान्तर में उनके घर पुत्र रूप में जन्म लेंगे और त्रिदेवों के अंश रूप में दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम रूप में उत्पन्न हुए थे।

अत्रि पुत्र चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा से विवाह किया जिससे उसे बुध नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बाद में क्षत्रियों के चंद्रवंश का प्रवर्तक हुआ। इस वंश के राजा खुद को चंद्रवंशी कहते थे। चूंकि चंद्र अत्रि ऋषि की संतान थे इसलिए आत्रेय भी चंद्रवंशी ही हुए। ब्राह्मणों में एक उपनाम होता है आत्रेय अर्थात अत्रि से संबंधित या अत्रि की संतान। चंद्रवंश के प्रथम राजा का नाम भी सोम माना जाता है जिसका प्रयाग पर शासन था। अत्रि से चंद्रमा, चंद्रमा से बुध, बुध से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष। नहुष से यति, ययाति, संयाति, आयति, वियाति और कृति नामक छः महाबल-विक्रमशाली पुत्र हुए। नहुष के बड़े पुत्र यति थे, जो संन्यासी हो गए इसलिए उनके दूसरे पुत्र ययाति राजा हुए। ययाति के पुत्रों से ही समस्त वंश चले। ययाति के 5 पुत्र थे। देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु एवं पुरु हुए। यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रहुयु से भोज, अनु से मलेच्छ और पुरु से पौरव वंश की स्थापना हुई। भगवान श्रीकृष्ण ऋषि अत्रि के वंशज माने जाते है। कई पीढीयों के बाद ऋषि अत्रि के कुल में ही भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

महर्षि अत्रि का आखिरी अस्तित्व चित्रकूट में सीता-अनसूया संवाद के समय तक अस्तित्व में था। भगवान श्रीराम अपने वनवास काल में पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूया की भक्ति को सफल करने के लिए स्वयं उनके आश्रम पर पधारते हैं जहाँ ऋषि अत्रि ने राम को दिव्यास्त्र और कभी न खत्म होनेवाले बाण दिए थे। और माता अनसूया देवी सीता को पातिव्रत्य का उपदेश देती हैं साथ ही उन्हें दिव्य वस्त्र एवं आभूषण प्रदान करती हैं। इस के अलावा महाभारत में भी ऋषि अत्रि के विषय में और उनके गोत्र से संबंधित विचार भी मिलता है। भीष्म जब शर-शैय्या पर पड़े थे, उस समय ये उनसे मिलने गये थे।

महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि रहे हैं। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के द्रष्टा हैं। ऋग्वेद के पंचम 'आत्रेय मण्डल' का 'कल्याण सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति-सूक्त' है, वह महर्षि अत्रि की ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही हमें प्राप्त हो सका है। यह सूक्त 'कल्याण-सूक्त', 'मंगल-सूक्त' तथा 'श्रेय-सूक्त' भी कहलाता है। जो आज भी प्रत्येक मांगलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा, अनुष्ठानों में स्वस्ति-प्राप्ति, कल्याण-प्राप्ति, अभ्युदय-प्राप्ति, भगवत्कृपा-प्राप्ति तथा अमंगल के विनाश के लिये सस्वर पठित होता है। एक ओर जहाँ उन्होंने वैदिक ऋचाओं का दर्शन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी प्रजा को सदाचार और धर्माचारण पूर्वक एक उत्तम जीवन चर्या में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित किया है तथा कर्तव्या-कर्तव्य का निर्देश दिया है। इन शिक्षोपदेशों को उन्होंने अपने द्वारा निर्मित 'आत्रेय धर्मशास्त्र' में निक्षिप्त किया है। वहाँ इन्होंने वेदों के सूक्तों तथा मन्त्रों की अत्यन्त महिमा बतायी है।

प्राचीन धर्म ग्रंथों के अनुसार देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमारों ने ऋषि अत्रि को वरदान प्रदान किया। ऋग्वेद में भी इस विषय के बारे में विस्तार पूर्वक एक कथा का उल्लेख भी मिलता है। कथा के अनुसार एक बार ऋषि अत्रि पर दैत्यों द्वारा हमला होता है पर जिस समय दैत्य उन्हें मारने का प्रयास कर रहे होते हैं तो उस समय ऋषि अत्रि साधना में लिप्त होते हैं। अपनी साधना की ध्यान अवस्था में उन्हें अपने ऊपर हुए इस जानलेवा हमले का बोध नही होता है। ऐसे में अश्विनी कुमार इस घटना के समय वहाँ उपस्थित होते हैं और ऋषि अत्रि को उन दैत्यों से बचा लेते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के दीर्घ तपस्या के अनुष्ठान का वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते-करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनी कुमारों ने इन्हें नवयौवन प्रदान किया।

ज्योतिष के इतिहास से ऋषि अत्रि का नाम जुडा है। ऋषि अत्रि ने ज्योतिष में चिकित्सा ज्योतिष पर कार्य किया, इनके द्वारा लिखे गये सिद्धांत आज चिकित्सा ज्योतिष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऋषि अत्रि द्वारा ज्योतिष में शुभ मुहूर्त एवं पूजा अर्चना की विधियों का भी उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही 'अत्री संहिता' की रचना हुई, अत्री संहिता में बहुत से ऐसे विषयों पर विचार किया गया है जो मनुष्य के सामाजिक एवं आत्मिक उत्थान की बात करते हैं। व्यक्ति के नैतिक कर्तव्यों एवं उसके अधिकारों का वर्णन भी इसमें मिलता है। इस संहिता में व्यक्ति को सहृदय और करुणा से युक्त और दूसरों का उपकार करने वाला कहा गया है। अपने परिवार के मित्र के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इन बातों का उल्लेख भी हमे इससे प्राप्त होता है।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

लेखक-लेखिकाओं से निवेदन

सप्तगिरि पत्रिका में प्रकाशन के लिए लेख, कविता, रचनाओं को भेजनेवाले कृपया लेखक-लेखिकाओं निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दें।

१. लेख, कविता, रचना, अध्यात्म, देव मंदिर, भक्ति साहित्य विषयों से संबंधित हों।

२. कागज के एक ही ओर लिखना होगा। अक्षरों को स्पष्ट व साफ लिखिए या टैप करके मूलप्रति डाक या ई-मेइल (hindisubeditor@gmail.com) से भेजें।

३. किसी विशिष्ट त्यौहार से संबंधित रचनायें प्रकाशन के लिए ३ महीने के पहले ही हमारे कार्यालय में पहुँचा दें।

४. रचना के साथ लेखक धृवीकरण पत्र भी भेजना जरूरी है। 'यह रचना मौलिक है तथा किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित नहीं है।'

५. रचनाओं को प्रकाशन करने का अंतिम निर्णय प्रधान संपादक का कार्य होगा। इसके बारे में कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं किया जा सकता है।

६. मुद्रित रचना के लिए परिश्रमिक (Remuneration) भेजा जाता है। इसके लिए लेखक-लेखिकाएँ अपना बैंक पास बुक का प्रथम पृष्ठ जिराक्स (Bank name, Account number, IFSC Code) रचना के साथ संलग्न करके भेजना अनिवार्य है।

७. धारावाहिक लेखों (Serial article) का भी प्रकाशन किया जाता है। अपनी रचनाओं को निम्न पते पर भेज दें। पता-

प्रधान संपादक,
सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस परिसर, के.टी.रोड,
तिरुपति – ५१७ ५०७. चित्तूर जिला।

(गतांक से)

श्री प्रपन्नामृतम्

(२६वाँ अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

मोबाइल - ९९००९२६७७३

श्रीयज्ञमूर्ति पर श्रीरामानुजाचार्य की कृपा

इसके बाद भी श्रीरामानुजाचार्य ने सोचा कि यद्यपि इस यज्ञमूर्ति को मैंने भगवान देवराज की कृपा से जीत लिया अन्यथा शास्त्रार्थकुशल तर्क प्रवीण इसको जीतना असम्भव ही था, इसलिए इसके लिए अच्छे और पृथक निवास स्थान की व्यायवस्था करनी चाहिए। इसके बाद उन्होंने एक विशाल मठ का निर्माण करके उसे देवराज (यज्ञमूर्ति) को प्रदान किया। देवराज का महान् वैभव सुनकर यतिराज श्री के सभी शिष्य एवं भक्तगण अत्यन्त प्रभावित हुए तथा भक्त ग्रामपूर्ण, मरुधग्रामपूर्ण, अनन्ताचार्य एवं यज्ञेश नामक भक्तण श्रीरामानुजाचार्य से समाश्रित होने के लिए आये जिनका पंचसंस्कार उन्होंने देवराज मुनि के हाथों सम्पादित कराया। भीतमना श्रीदेवराज मुनि उन शिष्यों से बोले कि-यह कार्य मेरे लिए वैसा ही है जैसे कि टिटिहरी के गले में ताड़ का फल जबरदस्ती बाँध दिया जाय, अतः आप लोगों की रक्षा यतिराज ही करेंगे। इसके बाद श्रीरंगम से आये हुए कुछ वैष्णवों ने वहाँ के लोगों से पूछा कि-जगद्गुरु मन्नाथ का मठ किधर है? इस पर वहाँ के लोगों ने पूछा कि-आप लोग किस मन्नाथ का मठ खोज रहे हैं? उन लोगों की वाणी सुनकर वे श्रीवैष्णव बोले कि-संसार में तो अद्वितीय वैभव सम्पन्न एक ही मन्नाथ हैं। श्रीवैष्णवों की वाणी सुनकर लोगों ने कहा- सम्प्रति तो यहाँ कोई दूसरे देव मन्नाथ भी आ गये हैं। नागरिकों की वाणी सुनकर वैष्णवों ने कहा- वैष्णव सिद्धान्त प्रवर्तक करुणासागर जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य नामक मन्नाथ को हम खोज रहे हैं। इसके बाद देवराज मुनि श्रीरामानुजाचार्य का वृत्तान्त उन वैष्णवों से सुनकर बड़े दुःखी हुए और शीघ्र ही यतिराज श्रीरामानुजाचार्य को साष्टांग प्रणाम करते हुए बोले-भगवान! चौरासी लाख योनियों में नाना प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ मैं न जाने किस पुण्य के कारण मानवदेह को प्राप्त कर विद्वान् होने के कारण 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस अज्ञानान्धकार में पड़ा रहा किन्तु आपने अपने कृपा पूर्वक मेरा उद्धार कर दिया फिर भी मोह के कारण मैं आपसे दूर हो गया हूँ। लगता है कि हमारा नाश हो जायेगा। अतः चाहता हूँ कि आपकी ही सन्निधि में रहकर आपके चरणकमलों की सेवा करूँ, ऐसा ही करने से मेरा उज्जीवन हो सकता है। श्रीदेवराजमुनि की बातें सुनकर मन्द-मन्द मुसकान करते हुए श्रीरामानुजाचार्य उन्हें भगवान वरदराज की नित्य पूजा-विधि को बतलाते हुए बोले कि-आप प्रतिदिन यहीं रहते हुए भगवान वरदराज की पूजा किया करें यही आपके लिये कैंकर्य है। यतिराज की आज्ञा का पालन करते हुए श्रीरंगम में रहकर देवराज मुनि ने भी संसारियों की रक्षा के लिए 'ज्ञानसार' एवं 'प्रमेयसार' नामक दो ग्रन्थों की रचना की।

।।श्रीप्रपन्नामृत का २६वाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

क्रमशः

गतांक से

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी
मोबाइल - ९४०३७२७९२७

**इरुन्दे निरुविनै प्पाशम् कळत्ति, इन्नु यानिरैयुम्
वरुन्देनिनि येम्मिरामानुजन्, मन्नु मामलर्त्ताळ्
पोरुन्दा निलैयुडै प्पुन्मैयिनो क्कोंन्नुम् नन्मैशेय्या
पेरुन्देवरै प्परवुम्, पेरियोर्तम् कळल् पिडित्ते ॥६२॥**

भगवद्रामानुजपादारविन्दसेवाविमुखानां पापिनामुपकारलेशमप्यकुर्वाणं श्रीरंगशायिनं परमपुरुषं स्तुवतां महतां (श्रीकूरनाथगुरुवराणाम्) पादारविन्दपरिचर्याबलेन विधूतपुण्यपापरूपकर्मग्रन्थिरभूवम् सांसारिकक्लेशवैदेशिकश्चास्मि॥

हमारे नाथ श्रीरामानुज स्वामीजी के श्रेष्ठ पादारविंदों का आश्रयण नहीं करनेवाले नीचों के प्रति कभी किसी प्रकार का उपकार नहीं करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान की स्तुति करनेवाले महात्मा श्रीकूरेश स्वामीजी के पादारविंदों की सेवा कर पाने के बाद, अब मैं पुण्य-पाप रूप कर्मबंधन से मुक्त हुआ; अब से मैं सांसारिक क्लेशों से सर्वथा दूर हो गया। (विवरण - इस गाथा में यह सुंदर अर्थ बताया गया है कि श्रीरामानुज स्वामीजी के पादारविंदों के आश्रित भाग्यवान ही भगवत्कृपा के पात्र होते हैं। और इस भाग्य से वंचित लोग तो ज्ञानभक्त्यादि-विभूषित होने पर भी भगवत्कृपा नहीं पा सकते।)

श्रीरामानुज स्वामीजी के पादारविंदों के आश्रित भाग्यवान ही भगवत्कृपा के पात्र होते हैं।

क्रमशः

मिथ की महिला चरित

सत्यभामा

- डॉ.के.एम.भवानी

मोबाइल - ९९४९३८०२४६

व्यास भगवान से लिखित 'महाभारत' में हर एक पात्र का अपना-अपना महत्व है। युगों के बाद भी आज भी हमारे भारतीय समाज में उन्हें याद किए बिना हमें एक दिन भी नहीं गुजरता। महाभारत के एक एक पात्र, एक एक गुण या लक्षण का उदाहरण है। आज के हमारे दैनंदिन जिंदगी में भी हम किसी न किसी संदर्भ में उनके नाम रटते, उदाहरण के तौर पर याद करते रहते हैं।

आज भी कोई औरत पति को वश में करना चाहती है तो लोग यही कहते हैं कि यह सत्यभामा की तरह पति को अपने पल्लू में बाँध कर रखना चाहती है।

सत्यभामा 'भूदेवी' का अवतार :

सत्यभामा श्रीकृष्ण की आठ पट रानियों में एक है। जब द्वापर युग में भगवान विष्णु श्रीकृष्ण का अवतार धारण करके आया तो श्रीलक्ष्मी रुक्मिणी, भूदेवी सत्यभामा बनकर उनके साथ पृथ्वी पर अवतरित हुई।

श्रीकृष्ण से विवाह :

सत्यभामा सत्राजित की पुत्री है। वह अद्वितीय सुंदरी है। उसे अपने रूप सौंदर्य पर घमंड भी है। वह श्रीकृष्ण से शादी करना चाहती है। लेकिन श्रीकृष्ण और सत्राजित के बीच में श्यमंतकमणि के बारे में झगडा चलता है। सत्राजित श्रीकृष्ण पर चोरी का आरोप लगाता है तो भगवान श्रीकृष्ण मणि को ढूँढ कर वापस लाकर अपने सच्चाई को साबित करता है तो सत्राजित अपनी गलती के लिए शर्मिंदा होकर माफी माँगते हुए अपनी बेटी सत्यभामा से श्रीकृष्ण की शादी कराता है और भगवान सूर्य से दिया गया महिमावाली मणि को भी दे देता है। सत्यभामा को श्रीकृष्ण की अन्य रानियों के बारे में मालूम होने पर भी वह खुद को श्रीकृष्ण का अत्यंत प्रेमपात्र समझती है। इसीलिए वह अपनी सुंदरता, भोलेपन

से भरा प्यार और घमंडता दिखाते हुए हमेशा श्रीकृष्ण को अपने पास ही रखना चाहती है।

पारिजात वृक्ष पृथ्वी पर आया कैसे? क्षीरसागर मंथन के समय महालक्ष्मी, कामधेनु के साथ-साथ पारिजात वृक्ष भी अवतरित हुई। तब से यह स्वर्ग लोक का वृक्ष स्वर्गाधीश इंद्र के बगीचे में विराजमान है। एक बार देवर्षि नारद श्रीकृष्ण के दर्शन करने आते समय अपने साथ सुगंधित, सुमनोहर पारिजात पुष्प को लाता है और कहता है कि कृष्ण को जो अत्यंत प्रिय है उसे यह पुष्प देना चाहिए। उस समय श्रीकृष्ण रुक्मिणी के मंदिर में रहता है और कृष्ण यह पुष्प रुक्मिणी को दे देता है। सत्यभामा को यह बात मालूम होते ही क्रोधित होकर अपमान समझकर कृष्ण से रूठ जाती है। तब श्रीकृष्ण सत्यभामा को मनाने के लिए कहता है कि एक फूल क्यों? वह स्वर्ग से पारिजात वृक्ष को ही लाकर सत्यभामा को देगा। अपने दिए वचन के अनुसार श्रीकृष्ण स्वर्ग पुरी जाकर इंद्र से लडाई करके, उसे हार कर, पारिजात वृक्ष को पृथ्वी पर लाकर सत्यभामा के उद्‌यान में रखता है। इस प्रकार सत्यभामा के कारण ही मानवों को पारिजात फूलों से भगवान को पूजा करने का सौभाग्य मिला।

पारिजात के फूलों की विशेषता :

पारिजात फूलों से भगवान की पूजा करना विशेष पूजा माना जाता है। आज भी लोग इन फूलों को पेड से तोडकर पूजा नहीं करते हैं। जो फूल पेड से नीचे गिरते हैं, उन्हीं को चुनकर उनसे पूजा करते हैं। आम तौर पर नीचे गिरे हुए कोई भी चीज भगवान को अर्पण नहीं करते हैं। सिर्फ पारिजात के विषय में यह भिन्न है।

श्रीकृष्ण का तुलाभार :

श्रीकृष्ण सत्यभामा के भोले स्वभाव से इतना प्रसन्न और मुग्ध हैं कि वह उसकी हर इच्छा को पूरी करना चाहता है। इसीलिए जब सत्यभामा देवर्षि नारद की बातों से प्रभावित होकर ऐसा व्रत करना चाहती है कि वह अपने पति कृष्ण को ही दान देने को तैयार हो जाती है तो कृष्ण इसके लिए भी राजी हो जाता है। सच में सत्यभामा यह व्रत इसीलिए करना चाहती है कि अपना पति कृष्ण हमेशा-हमेशा के लिए अपनी अन्य रानियों को छोडकर अपने पास ही रहेगा। व्रत के अनुसार जो अपने पति को एक सच्चे ऋषि को दान देकर फिर उसके वजन समान धन देकर उसे वापस लेने पर वह पति हमेशा के लिए पत्नी की बातों को मानता है। उस व्रत फल से प्रभावित सत्यभामा कृष्ण को अपना बनाने के लिए उसे दान देती है लेकिन कृष्ण उसके आँख खोलकर उसे रुक्मिणी के प्यार के महत्व को समझाना चाहता है। इसी कारण से वह सत्यभामा अपना सब कुछ अर्पण करने पर भी तराजू में नहीं तौलता है तो सत्यभामा खिन्न होकर शर्मिंदा से रुक्मिणी की मदद माँगती है। रुक्मिणी के प्रार्थना पर कृष्ण एक तुलसी दल दूसरी तराजू में रखते ही तौल जाता है। तब सत्यभामा सच्ची भक्ति को जान लेती है।

द्रौपदी से मुलाकात :

श्रीकृष्ण हमेशा सत्यभामा के भोलेपन को समझते हुए उसे सुधारने की प्रयत्न भी करता रहता है इसीलिए जब पांडव वनवास करते समय वह उनसे मिलने जंगल जाता है तब सत्यभामा को भी साथ ले चलता है। वहाँ द्रौपदी उसे पत्नी के लक्षण बताते हुए उसे कुछ उपदेश देती है और समझाती है कि पति के मन को सच्ची प्यार से ही जीत सकते है। पति के प्यार पाने के लिए मंत्र-तंत्रों का रास्ता अपनाना गलत है। यह भावना उसे और भी बदनाम करके पति की नजरों में उसे गिरा देता है।

नरकासुर वध :

माना जाता है कि नरकासुर का वध सत्यभामा के हाथों में ही हुआ है। नरकासुर महाविष्णु और भूदेवी का पुत्र है। वह ईश्वर से घोर तप करके अमर बनने का वर माँगता है लेकिन वह असाध्य होने के कारण अपनी माँ के हाथों में ही मारा जाने का वर माँगता हैं। वह यह सोचकर निश्चिंत हो जाता है कि कोई भी माँ अपने पुत्र का वध नहीं करती है चाहे वह कितना दुष्ट क्यों न हो। वर गर्व के साथ-साथ वह असुर गुणों से प्रभावित होकर लोगों को सताता रहता है। जब उसके कार्य असहनीय हो जाते हैं, तब सभी लोग कृष्ण से नरकासुर से बचाने की प्रार्थना करते हैं। उससे लड़ने जाते समय श्रीकृष्ण सत्यभामा को साथ लेकर जाता है वहाँ युद्ध में श्रीकृष्ण के मूर्छित होने पर सत्यभामा लडाई करके नरकासुर का वध कर देती है।

भामा कलापम :

सत्यभामा के श्रीकृष्ण से रूठना, उनके ऊपर अपना गुस्सा दिखाना आदि इतना प्रसिद्ध है कि आंध्रप्रदेश के प्रसिद्ध नृत्य 'कूचीपुडी' में ''भामा कलापम'' के नाम से नृत्यकार एक नृत्य रीति का प्रदर्शन करते हैं।

छायायाम पारिजातस्य हेमसिंहासनोपरि
आसीना मंबुदा श्यामाम आयताक्षम् अलंकृतम्
चंद्राननम चतुर्बाहुम श्रीवत्सांकिता वक्षसम्
रुक्मिणी सत्यभामा भ्यां सहितम् कृष्ण माश्रये।

दि. ११-१०-२०२१ को आं.प्र. सरकार की ओर से तिरुमल श्री बालाजी को रेशमी वस्त्र समर्पित करते हुए आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी और श्रीहरि के गरुड सेवा में भाग लेते हुए आं.प्र. के मुख्यमंत्री जी को आशीर्वाद देते हुए श्रीश्रीश्री बडा जीयर, श्रीश्रीश्री छोटा जीयर स्वामीजी।

दि. ११-१०-२०२१ को तिरुपति स्थित अलिपिरि के पास श्री वेंकटेश्वर सप्त-गो प्रदक्षिण मंदिर प्रारंभ के अनंतर गाय को चारा देते हुए आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी और उसके बाद प्रांगण को परिशीलन करते हुए दृश्य।

अलिपिरि पुन:निर्मित पैदल मार्ग को प्रारंभ (११-१०-२०२१) करने के बाद तिरुमल श्री बालाजी मंदिर में तुलाभार में (१२-१०-२०२१) भाग लेते हुए आं.प्र. के मुख्यमंत्री जी को आशीर्वाद देते हुए अर्चक।

तिरुमल मंदिर में एकांत में संपन्न स्वामीजी का वार्षिक ब्रह्मोत्सव के दृश्य।
(दि. ०७-१०-२०२१ से दि. १५-१०-२०२१ तक)

सेनाधिपति

ध्वजारोहण

महाशेषवाहन

सिंहवाहन

कल्पवृक्षवाहन

सर्वभूपालवाहन

तिरुमल मंदिर में एकांत में संपन्न स्वामीजी का वार्षिक ब्रह्मोत्सव के दृश्य।
(दि. ०७-१०-२०२१ से दि. १५-१०-२०२१ तक)

गरुडवाहन

हनुमंतवाहन

गजवाहन

सूर्यप्रभावाहन

चंद्रप्रभावाहन

चक्रस्नान

ति.ति.दे. द्वारा मुद्रित नूतन वर्ष की २०२२ के कैलेंडर और डैरी को विमोचन (११-१०-२०२१) करते हुए आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी। चित्र में राज्य के अन्य मंत्रीगण के साथ-साथ ति.ति.दे. अध्यक्ष व ति.ति.दे. उन्नताधिकारिगण।

आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी के द्वारा तिरुपति स्थित बर्ड प्रांगण में श्री पद्मावती पिडियाट्रिक कार्डिक अस्पताल को प्रारंभ (११-१०-२०२१) करते हुए दृश्य। चित्र में राज्य के अन्य मंत्रीगण के साथ-साथ ति.ति.दे. अध्यक्ष व ति.ति.दे. उन्नताधिकारिगण।

आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी के द्वारा नूतन एस.वी.बी.सी. हिन्दी और कन्नड भक्ति चॉनल को प्रारंभित (१२-१०-२०२१) करते हुए दृश्य। चित्र में मंत्रालय श्रीराघवेंद्रपीठाधिपति श्रीश्रीश्री सुबुदेंद्रातीर्थ स्वामीजी व राज्य के अन्य मंत्रीगण के साथ-साथ ति.ति.दे. अध्यक्ष और ति.ति.दे. उन्नताधिकारिगण।

आं.प्र. के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन्मोहन रेड्डी जी के द्वारा तिरुमल में नूतन निर्मित (पाकशाला) बूंदि पोटु को प्रारंभ (१२-१०-२०२१) करते हुए दृश्य। चित्र में राज्य के अन्य मंत्रीगण के साथ-साथ ति.ति.दे. अध्यक्ष व ति.ति.दे. उन्नताधिकारिगण।

दि. २५-०९-२०२१ को तिरुमल श्री बालाजी मंदिर में श्री वी.वीरब्रह्मम, आई.ए.एस., जी ने तिरुपति संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी के पद का कार्यभार को स्वीकारते हुए दृश्य।

द्रुपद महाराज फिर द्रोण से क्रोधित हुए। द्रोण का वध करने वाले बालक का जन्म होना चाहिए। ऐसा सोच कर द्रुपद ने तप किया। तपस्या का परिणाम स्वरूप, द्रौपदी और दृष्टद्युम्न दोनों का जन्म हुआ। दृष्टद्युम्न सामने खडा है। वह यह कहकर क्या दिखा रहा है कि वह दृष्टद्युम्न नही है, प्रदुपद है। जो तुम्हें मारने के लिए पैदा हुआ है, वह तुम्हारे सामने है। यह बात थोडा अजीब लग रहा है न? अगर कोई युद्ध करने आता है तो इधर या उधर जाना पडता है। ऐसा न करके, यह क्यों कहते कि तुम्हें मार डालेगा। यह कितना अप्रिय बात है। इस पर भी वह नहीं रुका। ''तव शिष्योण'' द्रुपद महाराज ने दृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य का शिष्य बनाया। अगर द्रोणाचार्य को मारना है तो अच्छी तीरंदाजी जरूर आनी चाहिए या अस्त्र होनी चाहिए। वे सभी यहाँ पर हैं।

देखिए द्रोणाचार्य कैसे व्यक्ति थे। यह जानते हुए कि वह उसे मारने के लिए पैदा हुआ था, फिर भी उसे संपूर्ण शिक्षा सिखाई। यहाँ एक बात बताऊँगा कि दृष्टद्युम्न कैसा व्यक्ति था। कौरवों की ओर सेनापति बदलते रहें। पहले भीष्म; उसके बाद द्रोण, फिर कर्ण, शल्य ऐसे कई सेनापति के रूप में रहें। लेकिन अठारह दिन तक केवल प्रद्युम्न ही पांडव पक्ष के सेनापति बने रहें। अब देखिए। इसका असर क्या होगा? यदि तुम पहले ही प्रद्युम्न को अक्षम कर दिया होता, तुम्हारी बुद्धि के बारे में, क्या बात करें? बुद्धिमत्ता किसके पास है। 'धीमता', प्रद्युम्न के पास है। प्रद्युम्न एक बुद्धिमान व्यक्ति है जो आपको मारने के लिए, आप ही के पास शिक्षा प्राप्त की। तुम मूर्ख हो। ऐसे अज्ञानी अब युद्ध में खडे होकर मेरे जीवन को खतरे में डाल दी। क्या गुरुजनों से ऐसा बात करते है? लेकिन वह ऐसा ही कर रहा है। अपने गुरु के मन को ठेस पहूँचा रहा है। हमें अपने गुरु के प्रति ऐसा व्यवहार किसी भी अवस्था में नहीं करनी चाहिए। अपने गुरु के पास जाते समय नम्रता के अलावा किसी अन्य तरीके से न बोलें। इस

बात को स्पष्ट करने के लिए परमात्मा ने इस श्लोक को विशेष रूप से यहाँ रखा है। गुरुओं के शरण में जाना तथा उनके तक पहूँचना कोई बडी बात नही है। उनके पास जाने के बाद उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण विनम्रता है या किसी अन्य प्रकार से है, हमारा भविष्य इस पर निर्भर रहता है। अब तो दुर्योधन का भविष्य स्पष्ट हो गया न! अब तो दुर्योधन का कोई भविष्य नहीं है।

दुर्योधन क्यों हार गया। क्योंकि उसने गुरु का अपमान किया। गुरु का कहाँ पर अपमान किया? जब युद्ध शुरू होनेवाला था, तभी उसने गुरु का अपमान किया। यानि गणपति पूजा करते समय यदि हम भगवान का अपमान करेंगे तो जो दुष्परिणाम होते है ऐसा ही हुआ है। उसने भगवान का अपमान किया है; इसलिए उसे कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। वर्तमान स्थिति में कम से कम युद्ध में विजय प्राप्त करना जरूरी है। लेकिन उसे यह भी प्राप्त नहीं हुआ। पर अर्जुन को विजय प्राप्त हुआ। उन्होंने जगद्गुरु श्रीकृष्ण के शरण में जाकर विनम्रतापूर्वक पूछ रहे है- क्या करना चाहिए, मुझे पता नही। आप उपदेश देकर मुझे निर्देश दें। इसलिए हम अर्जुन और दुर्योधन के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से समझना होगा। हमें किसी भी हाल में दुर्योधन जैसा नहीं बनाना चाहिए। अर्जुन जैसा बनाना चाहिए। यही है भगवद्गीता का पाठ।

जब हम गुरुओं के अलावा किसी और के पास जाते है तो अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त करें? हमें उन्हें यह स्पष्ट करना होगा कि हमारी भावनाएँ क्या है? दुर्योधन अपनी मन की ईर्ष्या को सरल वाक्यों से ढकते हुए बात कर रहा है। इस तरह अस्पष्टता से बात करना बहुत अप्रिय है। ऐसा काम नहीं करना चाहिए। न केवल गुरु से ही नही, बल्कि किसी से भी अस्पष्ट रूप से बात नहीं करना चाहिए। यदि किसी बात का दूसरा अर्थ निकलता है तो वह अर्थ ऐसा होना चाहिए जिससे दूसरे व्यक्ति को प्रसन्नता हो। और हमारी बाते ऐसा नहीं होना चाहिए कि सामनेवाले दुःखी हो जाए। ऐसा करना बहुत ही अप्रिय बात है। यह दुर्योधन जैसे दुर्जनों का काम है। यह बात भगवद्गीतामृतम् से हमें सिखा रही है, इसलिए हमे बहुत सावधानी से इस विषय को ध्यान में रखना चाहिए। जब भी गुरु से मिलें, उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम करके, उनसे हमें जो लाभ चाहिए उसे प्राप्त करें।

यदि हम दुर्योधन जैसे रहेंगे तो हमें फल प्राप्त नहीं होगा। अर्जुन के समान रहेंगे तो, अखिलांड कोटि ब्रह्मांडनायक, परम देव श्रीकृष्ण भगवान हमें उत्तम फल प्रदान करेंगे। केवल इस बात को हमें ध्यान में रखना चाहिए। इस श्लोक के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है। बस एक बार सुनने से यह बात हम नही समझ सकते। इस प्रकार की बातों को समझना हो तो हमें उन ध्वनियों को भी सुनना होगा। उनका उच्चारण करना होगा। जब इस तरह उच्चारण करते है तो यह भावना और यह गुरु भक्ति पूरी तरह से हमारे मन में प्रवेश करती है।

गुरु भक्ति के बिना कोई भी कार्य सफल नही हो सकता। गुरु की कृपा के बिना कोई भी प्रयोजन सिद्ध नही होता। गुरु का अपमान करके किसी का भी भला नही हुआ। इस बात को हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। यह बात हमारे जीवन में एक आदत बन जानी चाहिए।

क्रमशः

(गतांक से)

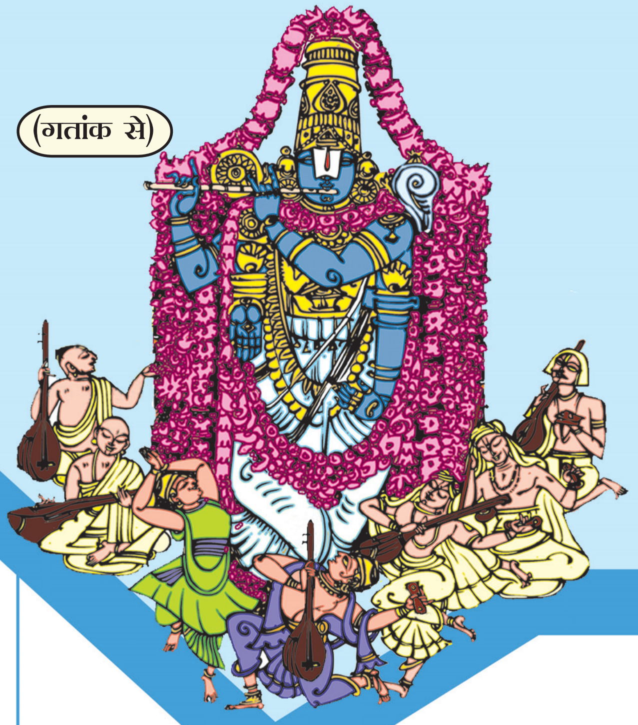

हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश

तेलुगु मूल - श्री एस.नागराजाचार्युलु

हिन्दी अनुवाद - डॉ.एम.आर.राजेश्वरी
मोबाइल - ९४९०९२४६१८

श्रीनिवास नीने पालिसो। श्रितजनपाल।
गानलोल श्रीमुकुंदने।
ध्यानमाल्प सज्ञनर मानदिं परिपालिप
वेणुगोपाल गोविन्द वेदवेद्य नित्यानंद।

(हे श्रीनिवास! मेरी रक्षा तुम ही करो! तुम आश्रितजन रक्षक हो। गान के प्रेमी हो। तेरा नाम श्रीमुकुंद है। जो ध्यान मग्न सज्ञन होते हैं, साधक होते हैं, उनका आपके प्रति जो प्रेम है, उसके रक्षक वेणुगोपाल, गोविन्द हो। तुम वेदों के ज्ञाता हो, नित्यानंदमयी हो।)

अनुदिन अनेक रोगगल। अनुभविसुवेनो
घन महिम नीवे बल्लेया।
तनु विनलि बलविल्ल नेनेद मात्र सलहुव
हनुमदीश पुरंदर विठल नीवे ओलिदु।।

(हे स्वामी! श्रेष्ठ, उत्तम मानव शरीर को प्राप्त करने के बाद भी, तुम्हें मैंने छुआ तक नहीं, तेरी प्रार्थना नहीं की, मेरी रक्षा करो स्वामी। कब ही मुझे तेरे चरणों को छूकर, तुझे देखकर, तेरी पूजा करने का अवसर मिलेगा? अंधकारमय इस संसार में मार्ग से भ्रष्ट होकर खड़ा हूँ। मेरे सामने तुम आ खडे हो जाओ। हे स्वामी! हर दिन रोगग्रस्त होकर मैं पीडित रहता हूँ। मुझे तुम देख नहीं सकते हो क्या स्वामी? हे प्रभो! मेरे शरीर की शक्ति घट रही है। बुलाने से तुरंत प्रत्यक्ष होने वाले हे भगवान आओ, मेरी रक्षा करो, मुझे तारो!)

नवविधभक्ति में मैं आत्मनिवेदन के बल पर 'नानेनुमाडिदेनो वेंकटराय। नीनेन्न सलहबेकु। पुरंदरदास जी कहते हैं- 'मैंने क्या ही अपराध किया? मेरी रक्षा करो हे भगवान!' पुरंदरदास इसके साथ-साथ, गज, ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी का उदाहरण देकर भगवान से रक्षा की भिक्षा माँगते हैं। पुरंदरदास प्रार्थना करते हैं। 'अगर मुझसे गलती भी हुई हो, मेरे सारे पापों का हरण करो'- 'तप्पू गलेल नी नोप्पिकोळ्ळो नम्मप्पकायो'। वे कहते हैं- 'अष्टादरु एन्नव गुणएणिसदे! सत्संकल्प तिम्मप्पनीनु'- माने, सदाचारी बनकर, तेरा भक्त बनकर, अगर मैं तेरे भक्तों की सेवा नहीं कर पाया हो, तब भी मुझे क्षमाकरो, मेरा उद्धार करो। पुरंदरदास जो सज्ञन, सुशील तथा

निरहंकारी हैं, वे इस गीत के अंतिम भाग में ऐसा कहते हैं -

एष्टु हेललि अवगुणलेल्ला। अउ।

इष्टु अष्टु येंदु एणिके इल्ला।

दृष्टिइंदलि नोड्डु दीनवत्सल। सर्व।

सृष्टि गोडेय पुरंदर विठल।।

मेरे अपराध तो अनगिनत हैं, मुझपर दया करो, मुझे तारो (अपराध सहस्राणि क्रियंते हर्नि शंतयम्, नमे भक्त प्रणश्यति)। भगवान पर विश्वास करनेवाले का नाश नहीं होता। भगवान वेंकटेश्वर के प्रति भक्ति तथा विश्वास रखनेवाला भयरहित रहता है - इसके दृष्टांत में पुरंदरदास अपनी भक्ति को इस प्रकार प्रकट करते हैं-

वेंकटरमण वेदांतनिन्न यपाद पंकजकंडमेले।

मंकु मानवर बेडि सुवुदुचि तवे। शंख चक्रांकितने।।

(हे वेंकटरमण! वेदांतवेद्य! तेरे पादपद्मों को देखने के बाद भी मुझ जैसे अल्पजीवियों को क्षमायाचना करवाने के लिए जो तुम काम कर रहे हो, क्या यह तेरे लिए यही लगता है क्या?)

श्रीर सागरव पोंदिदव मथिसिद! नीरुमज्जिगे काणने।

चारु कल्पवृक्ष दडियलिकुलितवगे! दोरे तिंत्रिणि बयकेये।

सार्वभूपालन सूनु येंदेनि सिदवगे। सूरे गूलिन तिरुके।

नारि लक्ष्मीकांत निन्न पोंदिदवगे। दारिद्र्य दट्टुलिये।

सुर नदियलिमिंदु शुचि यादमेलिन्नु दुरितगलट्टु लिये।

परम पुरुष निन्न पोंदिर्ददासर्गे अरिगल भीतियुंटे।।

गरुडन मंत्रव कलितुजपिसुवगे। उरगन हावलिये।

हरि पक्कदोलुमने कट्टिदनरनिगे। करिगल भीतियुंटे।

परम पुरुष गुण पूर्ण नीनहुंदेंदु

मोरेहोक्केकायो एन्न।

उरगाद्रिवास श्री पुरंदर विठल। परब्रह्म नारायण।

क्षीरसागर में आश्रय पानेवाला, छांछ को पीना चाहेगा क्या? कल्पवृक्ष के नीचे बैठा व्यक्ति इमली को चाहेगा क्या? सार्वभौम का बेटा भिक्षा से प्राप्त भोजन चाहेगा क्या? हे लक्ष्मीपति! तेरे शरण में आया व्यक्ति दारिद्र्य से भय क्यों आयेगा? सुरनदी में डुबकी लगानेवाला पुनः पापी बनेगा क्या? गरुड़ मंत्र की दीक्षा में रत व्यक्ति शापों से भय आयेगा क्या! हे परमपुरुष! मैंने जान लिया कि तुम परमात्मा हो, तेरी शरण में आया हूँ मेरा उद्धार करो। हे उरगाद्रिवास, श्रीपुरंदरविठल परब्रह्म नारायण, मेरी रक्षा करो।

'पुरंदरदास ने 'ब्रह्मरुद्रादि 'वद्यंतम् भजे वेंकटनायकम्' - इस श्लोक का यथातथ प्रयोग करके - 'ब्रह्म शंकरादि वंद्य एनगे मुक्ति करुणिसो। वेंकटेश बेडिकोंचेकृपेय पालिसो' (मैं तेरी प्रार्थना करता हूँ) प्रार्थना करते हैं। आगे, वे कहते हैं- मुझ पर कृपावृष्टि बरसाओ, सार्वभौम स्वरूपी, सर्वेश्वर, तुम से मुझे जो भी मिलेगा, उसे मैं महाप्रसाद के रूप में स्वीकारूँगा (तेन त्यक्तेन भुंजीत) पुरंदरदास जी की रचनाओं में सिंधुभैरवी राग में गाये जानेवाला गीत -

वेंकटाचल निलयं वैकुंठ पुरवासम्
पंकजनेत्रं परमपवित्रं शंख चक्रधर चिन्मयरूपम्।।

यह गीत अति प्रसिद्ध गीत है। सभी संगीतज्ञ, संगीतसभाओं में इसको निश्चित गाते ही हैं। इसी रूप

में भजनवृंद 'वेंकटरमणने बारो शेषाचलवासने बारो', 'वेणुनाद बारो वेंकट रमणने बारो', इन दोनों का गान करते रहते हैं।

खरहरप्रिय राग में पुरंदरदास ने १५ चरणों से युक्त पद की रचना की- 'तिरुपति वेंकटरमण निनगेतके बारदुकरुण'। इसका अंत्यानुप्रास अति सुंदर बन पड़ा है।

इस पद में कवि ने श्रीनिवास का गुणगान के साथ उस स्वामी तक पहुँचने के अनेक मार्गों की सूचना दी। गीत का अंत- 'पाप विनाशिनि स्नान। हरि। पादोदकवे पान। कोपताप गल निधान। नम्म पुरंदर विठलन ध्यान।' अर्थात् ''पाप विनाशन तीर्थ में स्नान करना, हरिपादोदक (चरणामृत) को पीने के समान है, पुरंदर विठल का ध्यान क्रोधादि के शमन का उपाय है।''

''नोडु नोडु वेंकटेशनोडु नोटव! अवनु आडुवाटव बेटिगागि होरटु बंद प्रख्यातव'' - इस ७४ चरणों से युक्त गीत में पुरंदरदास ने एक गाथा सुनाई, यथा - श्रीनिवास हाथों में धनुर्बाण को लेकर, किरात के भेष में अश्वारूढ़ होकर, शिकार पर गया, वहाँ पद्मावती को देखा। यह वेंकटेश पुराण की गाथा है, इस पद का अंत्यानुप्रास इसकी शोभा बढ़ाती है।

इस गीत का अंतिम चरण ऐसा है- ''स्वामि वेंकटेश तानु बेटिमाडिद! स्वामि बेटिमाडिद! अप्प वेंकटेश तानु ओप्पिदिंदले। स्वामि गिरिगे बंदु श्रीपुरंदर विठल नें हागेनिंदने स्वामि हागे निंदने!''

पुरंदरदास ने वेंकटेश स्तुति से संबद्ध गीतों में 'वेंकटेश' मंत्री का विशाल अर्थ प्रस्तुत किया। आदित्य, भविष्योत्तर, गरुड़ पुराणों में वेंकटेश नामक शब्द के अर्थ प्रस्तुत हैं। पुरंदरदास ने वेद, शास्त्र तथा पुराणों से वेंकटेश नामक चार वर्णों से युक्त शब्द का प्रयोग अपने संकीर्तनों में विविध संदर्भों में, विविध रूपों में प्रयुक्त किया।

वेंकटेश निन्न नामक्के मोदलु नाकक्षरगलु नोडो।।

बिंक वाद नाल्कु वेद शास्त्र पुराण गलदरिंद।।

गीत को इस प्रकार प्रारंभ करके, 'वें' के लिए अर्थ मत्स्य, कूर्म, वराह अवतारों के वर्णन के साथ किया। 'क' के लिए वामन, परशुराम, राम, कृष्ण अवतार का वर्णन, 'टे' के लिए बुद्ध, कल्कि तथा स्वामी के द्वारा लक्ष्मीदेवी को वक्षःस्थल में स्थापित करने के संदर्भ में वर्णन किया। 'श' वर्ण का वर्णन-

शाकद तुदि यल्लि शांत पांडवरु द्रौपदिवास

दास श्यामसुंदर शरणु सज्जन गुरुचंद्र भास।

शाम सहित बहुमुक्तिय पोंदिद रुक्मांद पोश।

शाश्वत सलहोव पुरंदर विठल कलियुग वेंकटेश।।

पुरंदरदास ने महाभारत, भागवत-इतिहास-पुराण आदि में व्यक्त अर्थों का ही प्रयोग किया। लाखों की संख्या में श्रीनिवास की स्तुति से संबंधित संकीर्तन की रचना हुई हैं। वे सभी आज अनुपलब्ध हैं। लेकिन जितने उपलब्ध हैं, उन सबका विश्लेषण करेंगे तो ग्रंथ का आकार बहुत बड़ा बन जायेगा। मनसा-वाचा-कर्मणा इन दास श्रेष्ठों के श्रीनिवास पर विरचित कुछ संकीर्तनों को उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत की गई हैं।

क्रमशः

(गतांक से)

तिरुपति श्रीवेङ्कटेश्वर

(तिरुपति बालाजी)

हिन्दी अनुवाद - प्रो.यद्दनपूडि वेङ्कटरमण राव
प्रो.गोपाल शर्मा

सत्रह तीर्थों का माहात्म्य

1. कपिल तीर्थम्

(वरा. पु. भाग - 1, अ. 8, श्लोक 4 - 8 में इसके बारे में संक्षिप्त उल्लेख है। इसका समग्र परिचय वामन. पु. अ. 4, श्लो. 36 - 47 में प्राप्त होता है।)

शेषाद्रि पदतल प्रांत में कपिलेश्वर लिंगाकार में अवतरित हुए हैं। इससे पहले भगवान शिव पाताल लोक में कपिल मुनि द्वारा आराधित थे। कुछ विशिष्ट कारणवश कपिलेश्वर लिंग रूप में भूमि से निकलकर भूमि तल पर यहाँ उद्भवित हुए हैं। सुरों (देवताओं) ने भगवान शिव की यहाँ आराधना की है। जहाँ उद्भूत हुए हैं वहीं उनकी प्रतिष्ठा भी की। कपिलेश्वर के लिंग रूप में उद्भवित होने से पहले ही कामधेनु (सुर गाय) यहाँ आ गयी। यहाँ एक छोटी गुफा है। इसी गुफा का नाम ''कपिलतीर्थ'' है। यहाँ एक तीर्थम् (झरनी) भी है। यहाँ के शिव की आराधना - पूजा से सभी पाप मिट जाते हैं। कपिलेश्वर की शक्ति अनुपम है (वरा. पु.)।

कपिल लिंग मूलतः पाताल लोक में विराजित तथा कपिल महर्षि से पूजित था। कामधेनु उनका अभिषेक किया करती थी। यह लिंग पृथ्वी को भेद कर ऊपर आया है। लिंग का ऊपर की ओर बढ़ना कामधेनु को स्वीकार नहीं था। कामधेनु ने अपने खुर से बढती को रोकने का प्रयास किया। परिणामतः प्रारंभ की निशान लिंग पर पडी। लिंग का निछला भाग चाँदी के समान धवल और मध्य भाग सुवर्ण आभा से अधिक प्रकाशमान है। लिंग का शिरो भाग सूर्य प्रकाश के समान उज्ज्वल है। इनके पाँच सिर हैं। त्रिनेत्र (तीन आँखें) भी गोचरित हैं। पाँच रंगों से युक्त होकर देखने पर प्रचण्ड लगते हैं, लिंग रूपी शिव जी। लिंग का मूल पाताल में शाश्वत रूप से है। कपिल महर्षि के द्वारा सबसे पहले आराधित होने के कारण यहाँ के शिव जी का नाम 'कपिलेश्वर' पडा। कृतयुग से ये यहाँ पर विराजमान हैं। ये त्रेतायुग में अग्निदेव से आराधित हुए थे। इसलिए ये 'अग्नेय लिंग' भी माने जाते हैं। इनका आदि - अंत कोई पा नहीं सकते। (कहा जाता है कि पहले ब्रह्म ने इस लिंग को

नापने के लिए आदि तक पहुँचने का प्रयास किया था और विष्णु ने अन्त का पता लगाने। दोनों अंततः असफल ही रह गये।)

द्वापरयुग (तीसरा युग) में भगवान विष्णु के चक्र (सुदर्शन) ने इनकी उपासना की। कलियुग (आज का चौथा युग) में भी यह आराधना जारी है। यहाँ का लिंग कपिला गाय के द्वारा भी पूजित है। कपिलेश्वर के सामने पवित्र जल धारा और तीर्थ सरोवर देखने को मिलते हैं। इसी सरोवर के बिल से कपिलेश्वर उभर कर पृथ्वी पर विलसित हैं। पवित्र जल से संपूरित कपिल तीर्थ की झरी अत्यंत महिमा युक्त है। इसके दर्शन मात्र से पाप झड जाते हैं। इसमें पवित्र स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ और वाजपेय याग का फल मिलता है। जल प्रपात का स्नान पुनर्जन्म राहित्य प्रदाता है। कहने का तात्पर्य यह कि यहाँ का पवित्र स्नान मनुष्य को आगे के जन्मों से मुक्त करता है एवं मुक्ति प्रदान करता है।

कार्तिक मास में ''कार्तिक पूर्णिमा'' के दिन त्रिलोकों के सभी तीर्थ आकर इस तीर्थ में समाहित रहते हैं। वे मध्याह्न की चार घंटिकाओं (चार घण्टों) तक यहाँ रहते हैं। उस समय पर इस तीर्थ में पवित्र स्नान ब्रह्मलोक सिद्धि प्रदान करता है। यहाँ एक तिल सम सुवर्णदान मेरु पर्वत सम पुण्य देता है। इस संदर्भ में यहाँ किया जानेवाला अन्नदान सोम लोक (चंद्रलोक) में अन्नदान सम माना जाता है। यहाँ कन्यादान (लडकी का विवाह) करना, गोदान करना, विद्यादान करना, विद्या - मंत्रोपदेश कराना - सब स्वर्ग (देवताओं का लोक) लोक सिद्धि के कारक हैं। कैलाश, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक वास की प्राप्ति की इच्छा भी पूरी होती है। जो यहाँ मंत्र-श्लोक (मंत्रोच्चारण) सहित समस्त तीर्थों के समागम के समय पर पवित्र स्नान करता है, उसे उपयुक्त सभी फल प्राप्त होते हैं। यहाँ का कार्तिक पूर्णिमा के दिन का स्नान अत्यंत महत्वपूर्ण और शान्ति तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला होता है। यह विष्णु पादम् (विष्णु का चरण) प्राप्ति कारक है।

(वामन. पु. अ. - 4, श्लो. 36 - 47 तथा 50 - 57)

जब श्रीवेङ्कटेश्वर ने अपनी माता सम सेविका वकुलमाता को पद्मावती देवी के साथ अपना विवाह कराने के लिए आकाशराजा के पास भेजा था, तब उन्होंने वकुलमाता से पहले कपिल तीर्थ में पवित्र स्नान करने और कपिलेश्वर की पूजा करने की बात भी कही

थी। माता ने ऐसा ही किया था। उनको अपने कार्य में सफलता भी मिली थी। (भविष्योत्तर पु. अ. - 8, श्लो. 79 - 82)

2. शक्र तीर्थम्

कपिल तीर्थम् के ऊपर पर्वत शिखर पर अत्यंत पवित्र शक्र तीर्थम् है। माना जाता है कि शक्र (इन्द्र) को शक्र तीर्थ स्नान से गौतम ऋषि के शाप से मुक्ति मिली थी। अहल्या से छद्म रूप में मिलने के प्रयत्न के कारण ही गौतम ने इन्द्र को शाप दिया था। अहल्या गौतम महर्षि की धर्म पत्नी थीं। शक्र तीर्थ को वज्र तीर्थ भी कहते हैं।

3. विष्वक्सेन सरोवर

शक्र तीर्थम् के ऊपरी प्रान्त में विष्वक्सेन सरस् (तीर्थम्) है। विष्वक्सेन वरुण के पुत्र हैं। अपनी तपस्या के बल से उन्होंने विष्णु से सारूप्य प्राप्त किया है। विष्णु के सान्निध्य (सन्निधि) में रहते हुए वे वैकुण्ठ की सेना के सेनापति भी हैं। विष्णु सारूप्य की प्राप्ति के फलस्वरूप ये भी शंख - चक्र धारी बने हैं।

4-8. पंचायुध तीर्थम्

भगवान विष्णु के पाँच आयुध हैं - शंख(पांचजन्य), चक्र(सुदर्शन), गदा(कौमोदकी), सारंग(धनुष) और नंदक(खड्ग)। इन आयुधों के नामों से विष्वक्सेन सरस् में पाँच तीर्थ विराजमान हैं। ये पाँच तीर्थ अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण हैं।

9. अग्निकुण्ड तीर्थम्

यह तीर्थ पंचायुध तीर्थ के ऊपर है। उस तक पहुँचना दुष्कर और कठिन है।

10. ब्रह्म तीर्थम्

ऊपर स्थित तीर्थों में यह अंतिम तीर्थ है। इसे महाहत्या पाप को शमित और परिहरित करने की शक्ति प्राप्त है। यह अत्यंत महिमा युक्त माना जाता है।

11-17. सप्तर्षि तीर्थम्

ब्रह्म तीर्थम् के पास सप्त ऋषियों के नाम पर सात तीर्थ हैं - कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, और वशिष्ठ। इन तीर्थों का जल अति पवित्र माना जाता है। ये सप्त तीर्थ सात तीर्थों का समूह है। इनमें क्रमशः एक के बाद एक का महत्व दस गुना अधिक गिना जाता है।

एक बार एक ब्राह्मण ने समस्त तीर्थों की यात्रा का संकल्प लिया। उस समय विष्णु देव ने उनके सपने में दर्शन देकर सलाह दी कि ''इस पुष्कर शैल पर अति पवित्र तीर्थ हैं। ये तीर्थ अत्यंत महिमावान है। इन तीर्थों का आरंभ ''कपिल तीर्थम्'' से होता है। अगर तुम इन तीर्थों में पवित्र स्नान करोगे तो अमित फल पाओगे। इन तीर्थों में पवित्र हृदय से, धार्मिक दृष्टि से स्नान करोगे तो समस्त पापों का परिहार होगा। अनेक तीर्थों के पवित्र-स्नानों से अधिक फल मिलेगा।'' तब ब्रह्म ने इन्हीं तीर्थों की यात्रा का संकल्प किया और (हरि-गिरि) वेङ्कटाचल के लिए ब्रह्मलोक से निकले। सभी तीर्थों के साथ सप्तर्षि तीर्थ का सेवन किया। इस प्रकार वेङ्कटाचल के तीर्थों के साथ विष्णु द्वारा घोषित और ब्रह्म द्वारा वांछित सप्त ऋषि तीर्थम् पूर्णफल प्रदायक हुए।

तैंतीस करोड पचास लाख तीर्थों की समवेत महिमा, त्रिलोकों के तीर्थों की महत्ता इन सप्तर्षि तीर्थों में निहित है। यह हरि-गिरि (वेङ्कटाचल) का महत्व है। सप्त गिरियों, सात पहाडों की प्रकृति की रमणीयता के बीच पवित्र तीर्थों का स्नान अतुलनीय आनंद प्रदान करता है। वेङ्कटाचल के दर्शन की सर्वोत्कृष्ट पावनता अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। श्रीकृष्ण के बडे भाई बलराम ने इस तीर्थ-यात्रा का फल पाया है।

क्रमशः

(गतांक से)

मंगलाशासन आल्वार-पाशुरम्

तमिल मूल - श्री टी.के.वी.एन. सुदर्शनाचार्या

हिन्दी अनुवाद - श्री के.रामनाथन
मोबाइल - ९४४३३२२२०२

आ आ एन्नादु उलगत्तै अलैक्कुम् असुरर् वाळनाळ् मेल्
ती वाय् वाळी मळै पोळिन्द चिलैया तिरुमा मगळ् केळवा
तेवा सुरर्कळ् मिगणंगळ् विरुम्बुम् तिरुवेंगडत्ताने
पू आर् कळल्गळ् अरुविनैये परुन्दुमारु पुणराये।।
(३३२९)

कठिन शब्दार्थ - उलगम्-संसार, असुरर्-राक्षस, मळै-वर्षा, तिरुमा मगळ्-श्रीदेवी, पू-सुमन, कळल्गळ-चरण, पुणरायो- प्राप्त होना

भावार्थ - हे भगवान! आप संसार में जीवित जीवों पर अनुग्रह न करके सब को दुख पहुँचानेवाले असुरों पर अग्नि को बरसाने वाले बाणों को बौछार करने का धनुषधारी हैं। ऐसे असुरों के जीवन को नष्ट करके आप ने ही इस संसार की रक्षा की है। आप श्रेष्ठ देवी लक्ष्मी के पति हैं। तिरुवेंगड गिरिवासी आपको देवगण और मुनिगण पसंद करते हैं। बडा पापी मैं आपके कमल रूपी चरणों पर अपने आप को समर्पित करना चाहता हूँ। आप उसके लिए मुझपर दया दिखाने की कृपा कीजिए।

मतलब यह है कि भगवान विष्णु जीवों पर दया करके संसार की रक्षा करते हैं। वे लक्ष्मी देवी के पति हैं और उनके चरण में पहुँचने के लिए मुनिगण भी बडी तपस्या करते हैं। विश्वास है कि वे पापी पर भी दया दिखायेंगे।

पुणरा निन्द्र मरम् एळ् अन्डु एय्द ओरु विल् वलवा, ओ

पुणर् एय् निन्द्र मरम् इरण्डिन् नडुवे पोन मुतल्वा, ओ

तिणर् आर् मेगम् एनक् कळिरु सेरुम् तिरुवेंगडत्ताने

तिणर् आर् सार्ंगत्तु उन् पादम् सेर्वदु अडियेन् एन्नाळो

(३३३०)

कठिन शब्दार्थ - मरम-पेड, विल-बाण, वलवा-बल्लभ, नडुवे-बीच में, मेगम-बादल, कळिरू-हाथी, पादम-चरण, सेर्वदु-मिलना

भावार्थ - हे महान धनुर वीर! आपने रामावतार में सुग्रीव को अपना बल दिखाने के लिए सात पेडों को एक ही बाण से छेद डाला। आपने कृष्णावतार में साथ खडे दो पेडों के बीच में जाकर उनको तोड डाला।

आप भारी काले बादलों की तरह हाथियों के झुंड से भरे तिरुवेंगड गिरि में विराजित हैं। मैं मजबूत सारंगम् नामक धनुष को धारण करके आपके चरणों में पहुँचना चाहता हूँ। वह दिन मुझे कब प्राप्त होगा?

मतलब यह है कि भगवान विष्णु अपने अवतारों के द्वारा जीवों पर दया दिखाने के साथ-साथ अपने बल को भी प्रकट किया है। उनके पास भारी धनुष है जो भक्तों को पीडा से मुक्त करता है। विश्वास है कि ऐसे भगवान के चरण को पाने का दिन जल्दी आएगा।

एन्नाळो नाम् मण् अळन्द इणैत् तामरैगळ् काण्बदर्कु एन्डु

एन्नाळुम् निन्डु इमैयोर्गळ् एत्ती इरैंजी इनम् इनमाय्

मेय् ना मनत्ताल् वळिपाडु सेय्युम् तिरुवंगडत्ताने

मय् ना एय्ती एन्नाळ् उन् अडिगळ् अडियेन् मेवुवदे।।

(३३३१)

कठिन शब्दार्थ - मण-मिट्टी, अळन्द-मापना, तामरै-कमल, इमैयोर-देवगण, एत्ती-स्तुति, इरैंजी-प्रार्थना, मेय-शरीर, ना-जीभ, अडियेन-दास, मेवुवदु-पहुँचना

भावार्थ - हे भगवान! आप तो तिरुवेंगड गिरि में विराजित हैं। सारे देवगण आपके कमल चरणों का दर्शन पाने के लिए स्तुति करते हैं और प्रार्थना करते हुए बडी भीड में आते हैं।

वे अपने तन से मन से और जीभ से आपकी पूजा और पाठ करते हैं। मैं आपका सच्चा दास हूँ। मुझे आपके चरण में पहुँचने का वह शुभ दिन कब आएगा?

मतलब यह है कि महान देवगण भी भगवान विष्णु की कृपा पाने के लिए उनके स्थान तिरुवेंगड गिरि में आकर पूजा करते हैं। वे भगवान के चरण को पाने के लिए अपने को पूर्ण से अर्पित करते है। आशा है कि उनके चरण को पाने का दिन जल्दी आयेगा।

क्रमशः

श्री वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः

हिन्दू होने के नाते गर्व कीजिए!

* ललाट पर अपने इच्छानुसार (चंदन, भस्म, नामम्, कुंकुम) तिलक का धारण करें।
* नहाने के बाद निम्न भगवन्नामों में से किसी एक का एक पर्याय में १०८ बार जप करें।

श्री वेंकटेशाय नमः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो नारायणाय।

श्री वेंकटेश्वर स्वामी का परम भक्त शंखण राजा : (गतांक से)

स्वामिपुष्करिणी से संबंधित एक और कथा ब्रह्मांड पुराण में प्राप्त होती है। मातृश्री तरिगोंडा वेंगमांबा ने अपने 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यमु' काव्य में इस कथा का वर्णन किया है। वह शंखण राजा की कथा है। ब्रह्मांड पुराण में सूत ने शौनकादि मुनियों को शंखण राजा की कथा सुनायी है। चंद्र वंश में शंखण नामक एक राजा हुआ करते थे। कालदोष के कारण शत्रुओं से पराजित होकर वे अपने राज्य को खोकर रामेश्वर पहुँच गये। वहाँ रामसेतु के पास स्नान करके सुवर्णमुखी नदी के पास पहुँचे। फिर सुवर्णमुखी में स्नान करके उस के उत्तर में रहनेवाले पद्म सरोवर के पास पहुँच गये। पद्म सरोवर में स्नान करके उस के तट पर खडे होकर इस रूप में सोचने लगे। 'मेरा अहो भाग्य है! शत्रुओं के साथ युद्ध करके हार गया। अपने राज्य को खो दिया। अब मेरा खान-पान कैसे चलेगा। इन कष्टों को मैं कैसे झेल पाऊंगा। भगवान ने मेरी ऐसी गति क्यों करवायी। आगे मेरा क्या होगा? ऐसा सोचते वे बहुत चिंता कर रहे थे।' ऐसे अनेक प्रकार से दुख का अनुभव करते हुए नेत्रों को बंद करके वे परवश हो गये थे। तब अशरीर वाणी ने ऐसा कहा। ''हे निर्मलात्मा! मन में तुम थोडा धैर्य बनाओ। चिंता को दूर करो। यहाँ से उत्तर में एक क्रोस की दूरी पर श्री वेंकटाचल नामक पर्वत है। वहाँ तुम शीघ्र ही जाओ। वह पर्वत आर्तजन और पीडितों को कामधेनु समान है। शोकार्थियों को कल्पवृक्ष समान है। वह चिंतामणी नाम से अति प्रसिद्‌ध पर्वत है। वहाँ अकारण ही पीडाओं एवं बाधाओं के शिकार हुए लोगों के कष्टों को दूर करनेवाले श्री वेंकटेश्वर बसे हुए हैं। उन के मंदिर के पास स्वामिपुष्करिणी है। वह अत्यंत महिमावान पुष्करिणी है। वह इष्ट काम्यार्थों को पूरा करनेवाली है। वह सदा जल से भरी रहती है। उस के पश्चिम तट पर वल्मीकों से भरा पहाड है। वहाँ पर खडे होकर त्रिसंध्या कालों में पुष्करिणी में स्नान करके जितेंद्र ओर निष्ठा के साथ शंख, चक्र, गदाधारी श्री वेंकटेश्वर के षोडषोपचार-पूजाएँ करते रहो। तब वे स्वामी तुम पर प्रसन्न होकर तुझे फिर राज्याभिषिक्त करेंगे।''

जलाधिदेव श्री वेंकटेश्वर

- आचार्य आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी
मोबाइल - ८०७४७३३५३३

अशरीरि वाणी की इन बातों को सुनकर शंखण प्रसन्न होकर वेंकटगिरि पर्वत पर चढ गए। वहाँ पर स्थित चंदन, पुन्नाग और भी अनेक फल-फूल वृक्षों से सुशोभित, चमरी, कस्तूरी, मृगादि से शोभित, शुक, कलकंठ, मयूर, राजहंस आदि पक्षियों की कलरव ध्वनियों से भरे नयनानंदकारी दर्शन देनेवाले वेंकटाद्री पहाड के दर्शन किए। उस के बीच में अनेक दिव्य परिमल सुगंधों से भरे, शोणक, नीलोत्पलों से भरे, मत्स-कच्चप आदि जलचरों से भरी स्वामिपुष्करिणी के दर्शन किए। शंखण ने उस पुष्करिणी में सत् संकल्प के साथ त्रिकाल स्नान किया। साथ ही श्री वेंकटेश्वर स्वामी का ध्यान करते हुए विशेष पूजाएँ की है। शंखण राजा की इन पूजाओं से श्री वेंकटेश्वर भगवान प्रसन्न हुए। तब वे शंखण को दर्शन दिए। अनेक प्रकार की हारें, कुंडल, किरीट आदि भूषणों से सुशोभित कांतिमय प्रकाश से परिवेष्ठित, तुलसी मालाओं की सुगंध से तथा पुष्पमालिकाओं की सौरभ से सुशोभित, राजित सूक्ष्म उदरवाले, तिलकधारी, कमनीय कुटिल ललाटवाले, श्रीवत्स-कौस्तुभ चिह्नों को धारण करनेवाले, करुणा से भरे नेत्रोंवाले, शंख, चक्र, गदाधारी, हृदय पर लक्ष्मी को धारण करने प्रकाशवान, नीला और भूदेवी को अपने दोनों ओर धारण करनेवाले, दीन जनों का उद्धारक श्री वेंकटेश्वर स्वामी ने तब अनेक सहस्र-कोटि सूर्यप्रकाश सदृश दिव्य विमान मध्य में स्वामिपुष्करिणी के बीच में खडे होकर शंखण राजा को दर्शन दिए। तब ब्रह्म, रुद्र, देवताओं ने दुंदुभी बजायी। मृदंग और मंगलवाद्यों के साथ जय जयकार किया। साथ ही पुष्प वृष्टि करवायी। साथ ही नृत्य, गीतों के साथ निगमांत सूक्तों को भी सुनाया। तब शंखण महाराज ने स्वामी को साष्टांग दंड-प्रणाम करके इस रूप में विनति की है। ''हे देवाधिदेव! महात्मा! हे दीन रक्षक! हे जगन्नायक! मुझ पर दया करो! मेरी ओर करुणा से देखो! पूर्व आप के द्वारा मेरे पूर्वजों को दी गयी पृथ्वी को मैंने शत्रुओं में खो दिया। अब मैं दीन हीन हूँ। ऐसे मुझे आप ने दर्शन दिए हे परम पुरुष! कृपया मेरे शत्रुओं का निर्जन करके फिर से मुझे अपने राज्य दिलाओ।'' ऐसी विनति करनेवाले शंखण से चक्री ने ऐसा कहा। ''हे राजा तुम अपनी चिंता छोडो! अपने देश लौट कर सपत्नी राज्याभिषिक्त होकर खुश रहो।'' कहते शंखण को आशीर्वाद समेत आज्ञा दी। तदुपरांत हरि अत्यद्भुत ढंग से अदृश्य हो गए। तब ब्रह्मादि देवतागण हरि की प्रशंसा करके ''स्वामी की पुष्करिणी में स्नान करने कारण ही स्वामी प्रसन्न होकर शंखण को फिर से स्वामित्व प्रदान किया।'' कहते वे सब अपने-अपने स्थानों पर लौट गए।

तब शंखण महाराज ने स्वामिपुष्करिणी और पर्वत को प्रणाम करके, हरि को भी नमस्कार करके अपनी पत्नी के साथ अत्यंत आनंद से वेंकटाद्री पर्वत से उतर कर अपने राज्य लौटे। इधर शंखण के शत्रुओं की सोच में परिवर्तन आया। शंखण के साथ अपना विरोध की भी उन्होंने छोड देने का निर्णय किया। फिर से शंखण को राज्य लौटाने का निर्णय किया। यह सुन कर उस के देश के जन शंखण महाराज की खोज करते गोदावरी नदी के तट पर पहुँचे। तभी शंखण उस मार्ग में जाते अपने देश वासियों को पहचान लिया। अपने शत्रु के बारे में समाचार लेकर वह अपना देश कांभोज देश लौट गए। तदूपरांत श्री वेंकटेश्वर के प्रसाद के रूप में अपने राज्य को ग्रहण करके राज्य पालन करने लगे। ब्रह्मांड पुराण में सूत ने शौनकादि मुनियों को इस रूप में शंखण की कथा सुनायी।

स्वामिपुष्करिणी का माहात्म्य अपार है। जितना भी वर्णन करे उन के महत्व को हांक नहीं सकते हैं। जलाधिदेव श्री वेंकटेश्वर के दर्शनार्थ आये भक्त इस दिव्य पुष्करिणी में स्नान करते ही हैं साथ ही तिरुमल में पहुँचने के पहले स्वामी के और जल-स्त्रोतों में डुबकी लगाते हैं। ऐसे तीर्थों की एक श्रृंखला है। इस का परिचय स्वामी के एक परम भक्त आत्माराम की जीवनी से पता चलता है।

श्री वेंकटेश्वर स्वामी का परम भक्त आत्माराम :

महाराष्ट्र में आत्माराम नामक एक ब्राह्मण रहा करता था। वह बहुत बडा पंडित था। धर्मनिष्ठ भी था। देव, भूसुर आदि की पूजा नियमित रूप से करता था। इस रूप

में वह अपना धर्म भलि भांति निभा रहा था। पिता से प्राप्त संपदाओं को उसने कालांतर में खर्च कर डाला। फिर संपदाएँ नहीं कमायीं। इस से वह गरीब बन गया। वह अंदर ही अंदर अपने बारे में सोच कर दु:खी हुआ करता था। ऐसा आत्माराम एक दिन अपना घर छोड कर श्री वेंकटेश्वर के बसे पर्वत के पास पवित्र कपिल तीर्थ के पास पहुँच गया। उस कपिल तीर्थ में उसने पवित्र स्नान किया। स्पष्ट है कि जलाधिदेव श्री वेंकटेश्वर के द्वारा स्थापित जल-स्रोतों का आरंभ कपिल तीर्थ से ही शुरू होता है। साथ ही वहाँ पर बसे कपिलेश्वर स्वामी की आत्माराम ने निष्ठा के साथ पूजा की, फिर वहाँ से जंगल के रास्ते पर्वत पर चढने लगा।

सनत्कुमार के दर्शन करना :

कपिल तीर्थ के मार्ग में रहनेवाले सप्त तीर्थों में स्नान करके निर्मल चित्त के साथ आत्माराम पर्वत पर चढने लगा था। रास्ते में एक गुफा के मध्य में ध्यान निष्ठ सनत्कुमार की सन्निधि में वह पहुँच गया। सनत्कुमार का साष्टांग दंड प्रणाम करके उसने मुकलित हाथों से इस रूप में विनति की। ''हे तापसीवर्य! महात्मा! मुझे पापात्म को अपनाकर मुझे अपने साथ ले चलिए। आप के चरणों को छोड़कर मेरी कोई और शरण नहीं है। हे निर्मल हृदय! मुझ पर दया कीजिए। दारिद्र्य से परिवार को छोड कर भागते आप की शरण में आया हूँ। मेरे कष्टों का निवारण करके सुख प्रदान कीजिए महात्मा!'' आत्माराम की बातें सुनकर उस महात्मा ने कह। अब तुम को कष्ट क्यों। अपने पापों को दूर करने का समय आ गया है। तुम ने कौन सा पाप किया है? उस के बारे में सुनो। जन्मांतर में माधव की सेवा करने के विवेक से तुम दूर हो गए हो। साथ ही लोभ में पड कर दान कंटक बन कर गर्व करने लगा था। दान देनेवालों और दान लेनेवालों के बीच में तुम ने द्वेष पैदा किया था। ऐसी झूठी बातें उन्हें बताकर तुम ने दान-हानि का पाप किया है। आचार विहीन होकर कहीं भी खाते पीते अपने को श्रेष्ठ समझ कर दूसरों को नीच के रूप में देख रहा था। दान दिए बिना धन को इकट्ठा किया था। वह पाप अब कपिल तीर्थ में स्नान करने से दूर हो गया। श्री पद्मालय की कृपा चाहिए तो तुम को ऐसा करना होगा। सुनो! व्यूह लक्ष्मी सदा श्रीहरि के वक्षस्थल पर विराजमान होकर अपनी महिमा से स्वामी के भक्तों को संपदाएँ देती हैं।

सनत्कुमार के द्वारा लक्ष्मी के मंत्र का उपदेश देना :

तुम उस व्यूह लक्ष्मी की कथा को सुनो। वे अत्यंत दयालु, लोक माता है। वे पूर्ण चंद्र प्रभास युक्त हैं। वे पुरुषोत्तम प्रिय भी है। पद्मालय, अमल, पद्मपाणी, व्यूह भेद से वे साक्षात श्री महालक्ष्मी का अवतारी हैं। उन की कीर्ति का गायन करने से जय प्राप्त होगी। वे कारुण्य-मूर्ति, मंगल विग्रह रूपी हैं। भक्तों की सदा रक्षा करनेवाली हैं। सुनो सुनायस से भक्ति तत्परता से उन के प्रति भक्ति दिखाने से तुम्हारे सारे पाप दूर होकर अपार संपदाएँ प्राप्त होंगी। उस महादेवी का मंत्र मैं तुम्हें बताऊंगा। उस मंत्र का तुम सद्भक्ति से जप करो। यह बताकर। ''अंगन्यास, करन्यास पूर्वक लक्ष्मी मंत्र का उपदेश देकर ध्यान से जप करने की विधि को भी बताकर श्रीवेंकटाचल जाने की आज्ञा दी। श्रीनिवास तुम्हारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे।'' ऐसी आज्ञा देकर सनत्कुमार अदृश्य हो गए। तब आत्माराम मन में भयभीत होकर और पुलकित भी होकर नेत्रों में आनंद भाष्प के आने से सद्गुरु का ध्यान करने लगा। साथ ही उसने लक्ष्मी मंत्र का जप करना शुरू कर दिया। आकाश गंगा धरती पर उतरने की तरह विरजा नदी के रूप में प्रवाहित होनेवाली पवित्र पुष्करिणी तीर्थ को उसने देखा। शैलाग्र से प्रवाहित होनेवाली विराजा नदी के प्रवाह समेत पुष्करिणी को देख कर आत्माराम को बहुत आनंद हुआ। तभी वह पर्वत पर चढ कर स्वामी के उस पुण्य तीर्थ में स्नान किया। उसी के तट पर जप तप करते स्वामी के ध्यान में लीन हो गया। उसके साथ लक्ष्मी मंत्र को अत्यंत श्रद्धा से जप करने लगा।

क्रमशः

रामेश्वरम मंदिर भारत के तमिलनाडु में रामनाथपुरम जिले पंबन द्वीप में स्थित है। भारत के बड़े मंदिरों में से एक है, 'रामेश्वरम'। चारोंओर हिंदूमहासागर और बंगाल की खाई से घिरा हुआ एक शंकु आकार के द्वीप में यह मंदिर स्थित है। हिंदू धार्मिक ग्रंथों में भारत में चार धामों को अत्यंत पवित्र माना गया है। इन चार धामों में रामेश्वरम भी एक है। ये चार धाम हैं- उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में पुरी जगन्नाथ, पश्चिम में द्वारकानाथ और दक्षिण में रामेश्वरम। यहाँ का लिंग १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। शिव पुराण में १२ ज्योतिर्लिंगों का उल्लेख है।

''सौराष्ट्र सोमानाथम च, श्रीशैल मल्लिकार्जुनम्.....

सेतुबंधे तु रामेश्वरम, नागेशु दारुकावने.....॥''

इतना ही नहीं पवित्र काशी यात्रा के बारे में बताया जाता है कि काशी के गंगाजल से रामेश्वरम के शिव का अभिषेक करने के बाद काशी यात्रा पूर्ण हो जाता है। इस क्षेत्र में शिव और विष्णु (श्रीराम) के बीच अंतर मिटकर, दोनों का ऐक्य रूप रामेश्वर बन गया है। इससे इस क्षेत्र में शैव और वैष्णव समान रूप से दर्शन करने आते हैं। श्रीराम से शिवलिंग की प्रतिष्ठा तथा उपासना किए जाने से इस क्षेत्र का नाम रामेश्वरम पड़ा। यहाँ रामेश्वरम का एक और नाम है - रामनाथेश्वर मंदिर; माने राम से पूजित शिवमंदिर। उत्तर भारत में काशी विश्वनाथ के समान दक्षिण भारत में रामेश्वरम का महत्व है। इस मंदिर के बारे में रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कंद पुराण, शिव पुराण और कंब रामायण में उल्लेख पाए जाते

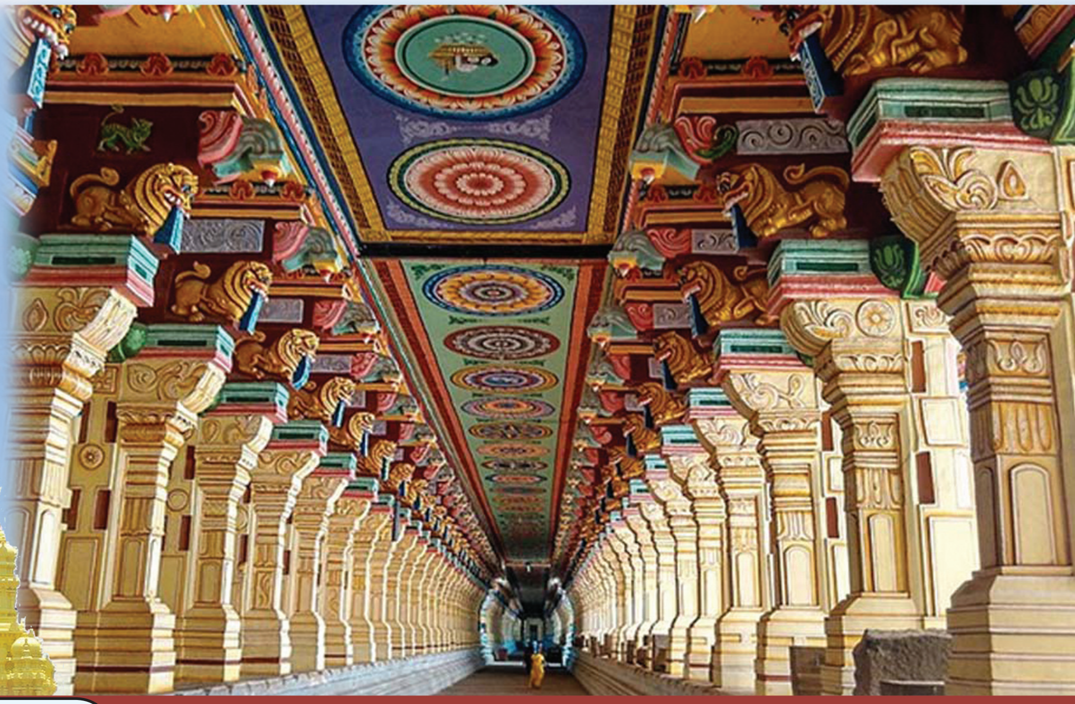

हमारे मंदिर

श्री रामेश्वरम मंदिर

- कुमारी बी आर गरिमाराव, मोबाइल - ९७४२५८२०००.

हैं। वाल्मीकि रामायण में समुद्र पर सेतु निर्माण के समय अनेक उल्लेख मिलते है। एक जगह पर इसका उल्लेख इस प्रकार है-

''नलश्र्चके महसेतुं मध्ये नदनदीपतेः।
स तदा क्रियते सेतुर्वानिरैर्घोरकर्मभिः।।''

इस मंदिर को तमिल के प्रसिद्ध कवि गण नायनार, अप्पार, सुंदरार, अंरियु तिरुग्गान संबंदार आदि ने अपने कीर्तनों में मंदिर के महत्व के बारे में तन्मय होकर गाया करते थे। इस मंदिर की पौराणिक कथाएँ और ऐतिहासिक महत्व बड़े ही रोचक है।

पौराणिक गाथा :

रामेश्वरम के बारे में दो पौराणिक कथाएँ प्रचलन में है। पहली कथा के अनुसार, जो शिव महापुराण में वर्णित है, भगवान राम जब माता सीता को रावण के बंधन से मुक्त कराने के लिए लंका पर युद्ध करने जा रहे थे, तब उन्होंने बालू से शिवलिंग की स्थापना की और विजयी होने का संकल्प लेकर, भगवान शिव की आराधना की। तब भगवान शिव प्रकट होकर, श्रीराम को युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद दिये। श्रीराम ने भगवान शिव से प्रार्थना की थी कि वे वहीं स्थापित हो जाएँ और अपने भक्तों को अपना दर्शन देते रहें। तब से भगवान शिव लोक कल्याणार्थ ज्योतिर्लिंग में स्थिर वास करने लगे।

दूसरी कथा के अनुसार श्रीराम युद्ध में रावण का वध करके लंका से वापस आकर गंधमादन पर्वत पर रुके थे। उनके आगमन से संतुष्ट ऋषि-मुनियाँ वहाँ आए, और राम को उन्होंने बताया कि ''हे राम! रावण पौलस्त्य का प्रपौत्र होने के नाते, ब्राह्मण है, उसका वध करने से आप को ब्राह्मण हत्या दोष लगा है।'' श्रीराम ने मुनियों से आग्रह किया- ''हे पूजनीय! इस दोष से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित बताने की कृपा करें।'' ऋषि-मुनियों ने श्रीराम से कहाँ कि ''हे जानकीवल्लभ! विधि-नियम के अनुसार शिवलिंग की स्थापना करके उसकी उपासना करें, ताकि आप सब दोषों से मुक्त हो जाएँगे।'' ब्राह्मण हत्या दोष से मुक्त होने के लिए श्रीराम ने शिव की आराधना करने का संकल्प किया। हनुमान से कैलाश पर्वत जाकर वहाँ ईश्वर से प्रार्थना कर एक उपयुक्त शिवलिंग लाने को कहा। हनुमान कैलाश जाकर अपेक्षित लिंग नहीं मिलने पर वही तपस्या करने लगे। यहाँ श्रीराम और सब मुनियों ने हनुमान न आने से, पहले ही कालातीत होने से, श्रीराम से सीता माता द्वारा निर्मित रेत के शिवलिंग को, जब चंद्रमा हस्ता नक्षत्र में था और सूर्य वृष राशि में था, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी, बुधवार को, स्थापित करवाया। यही ज्योतिर्लिंग बाद में रामेश्वरम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सीता माता द्वारा स्थापित लिंग 'रामनाथ लिंग' कहा जाता हैं। इस पूजा के पश्चात हनुमान आए, और अपने आने से पहले शिवलिंग की स्थापना और पूजा होने से वे क्रुद्ध हो गये। श्रीराम के कहने पर हनुमान ने अपने भुजबल से सीता माता द्वारा स्थापित लिंग को उखाडने की प्रयत्न की, पर असमर्थ हो गये। तब श्रीराम हनुमान से लाए गए काले पत्थर के बड़े शिवलिंग को माता सीता से निर्मित शिवलिंग के बगल में प्रतिष्ठा करके पूजा की, और वादा किया कि यहाँ सबसे पहले हनुमान से लाये गये लिंग की पूजा होगी, और बाद में सीता माता द्वारा निर्मित लिंग की पूजा होगी। आज भी इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है। यह लिंग 'काशी विश्वनाथ' कहा जाता है।

रामेश्वरम का ऐतिहासिक तथ्य :

यहाँ का रामसेतु एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में सामने आता है। धनुष्कोटी से भगवान राम ने लंका पर युद्ध के लिए पत्थरों से सेतु का निर्माण किया था। लिंग की प्रतिष्ठा के बाद प्रभु श्रीराम ने विश्वकर्मा के पुत्र नल और नील की सहायता से सारी दुनिया के प्रथम सेतु को बनवाया था। इसीलिए यह प्रदेश 'सेतुबंध रामेश्वरम' नाम से भी विख्यात है। युद्ध में विजई होने के बाद श्रीराम ने विभीषण की बात के अनुसार इस पुल को बाण के नोक से तोड़ दिया। आज भी ४८ किलोमीटर आधे सेतु के अवशेष सागर गर्भ में दिखाई पड़ते हैं। इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटानिका में इसको 'ऐडम्स ब्रिज' और 'रामसेतु' भी कहा गया है। नासा से लिए गए उपग्रह चित्रों के अनुसार धनुष्कोटी से जाफना तक एक पतली रेखा दिखाई पड़ती है, माना जाता है वही रामसेतु है।

रामेश्वरम का इतिहास :

जब श्रीराम से दो लिंगों की प्रतिष्ठा तथा पूजा हुई थी, तब मंदिर नहीं था। एक मुनि ने झोंपड़ी बनाकर उनकी पूजा करता था। कालांतर में मंदिर का निर्माण हुआ। रामेश्वरम और सेतु बहुत प्राचीन है, परंतु रामनाथ का मंदिर उतना पुराना नहीं है। इस मंदिर के निर्माण में अनेक राजाओं का अमूल्य योगदान है। ११७३ ई. में श्रीलंका के राजा पराक्रम बाहु ने मूल लिंग वाले गर्भगृह का निर्माण करवाया था। इसके बाद १५वीं शताब्दी में राजा उडैयान सेतुपति एवं नागूर निवासी वैश्य ने १४५० ई. में इसके ७८ फीट ऊँचे गोपुरम का निर्माण करवाया था। फिर सोलहवी शताब्दी में मंदिर के दक्षिणी में दूसरे हिस्से की दीवार का निर्माण तिरुमलय सेतुपति ने कराया था और राजा उडैयान सेतुपति कट्टत्तेश्वर ने नंदी मण्डप का निर्माण करवाया था। माना जाता है कि वर्तमान समय में रामेश्वरम मंदिर जिस रूप में मौजूद है, उसका निर्माण सत्रहवीं शताब्दी में कराया गया था। मंदिर के निर्माण में जाफना राजा का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। परंतु इस मंदिर का कई बार जीर्णोद्धार किया गया है।

रामेश्वरम में अन्य पवित्र मंदिर

१) पंचमुखी हनुमान मंदिर :

रामेश्वरम का एक और प्रमुख मंदिर पंचमुखी हनुमान मंदिर है। अपने कष्टों को लेकर भगवान से प्रार्थना करने पर वे सब दूर हो जाते हैं।

२) कोदंडराम मंदिर :

कोदंडराम मंदिर को 'कोदंडराम स्वामी मंदिर' भी कहा जाता है। १००० वर्ष इतिहास के इस मंदिर में राम की पूजा की जाती है। माना जाता है कि इसी जगह पर विभीषण ने राम से मुलाकात की थी इसी वजह से इस जगह पर विभीषण की भी पूजा होती है। यह आश्चर्य की बात है कि यह मंदिर १९६४ में चक्रवात से बच गया था।

३) नंबुनायकी माता का मंदिर :

इस मंदिर में नंबुनायकी माता की पूजा की जाती है, जो पार्वती माता को समर्पित है। पहले यह मंदिर धनुष्कोटी में था। १९६४ में चक्रवात के कारण से इस मंदिर को रामेश्वरम में स्थलांतर किया गया था। जिनको संतान नहीं है वे यहाँ पार्वती देवी की पूजा करवाते हैं।

४) गंधमादन पर्वत :

रामनाथ मंदिर के २ किलोमीटर दूरी पर गंधमादन नामक छोटी सी पहाडी हैं। विश्वास किया जाता है कि श्रीराम इसी गंधमादन पर्वत से लंका पर आक्रमण की योजना बनाई थी। पहाडी के ऊपर मंदिर में भगवान श्रीराम के पैरों के चिह्न है। यहाँ दो मंजिलों का मंदिर है; यह 'पादुका मंदिर' भी कहा जाता है। पहाडी पर अगस्त्यमुनि का आश्रम है।

५) धनुष्कोटी :

धनुष्कोटी रामेश्वरम द्वीप के दक्षिणोत्तर हिस्से के पूर्वी भाग में श्रीलंका के तलाईमन्नार से ३१ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह जगह 'सेतुबंध' भी कहा जाता है। किवंदंतियों के अनुसार, लंका में रावण पर विजय के बाद विभीषण ने श्रीराम को सलाह दी कि इस सेतु मार्ग से लंका वासी यहाँ पर और यहाँ के लोग लंका पर आक्रमण कर सकते हैं; इससे इस पुल को तोड़ देना चाहिए। श्रीराम ने विभीषण की बात को मानकर इस पुल को बाण के नोक से तोड़ दिया। इससे यह जगह 'धनुष्कोटी' कहा जाता है। धनुष्कोटी यहाँ के आकर्षणीय स्थलों में एक है।

५) विल्लीरणि तीर्थ :

रामेश्वरम से तीन मील पूर्व में तंगचिमडम गाँव है। वहाँ समुद्र में एक तीर्थकुंड है, जो विल्लूरणि तीर्थ कहलाता है। समुद्र के खारे पानी बीच में से मीठा जल निकलता है; यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहा जाता है कि एक बार सीताजी को बड़ी प्यास लगी। पास में समुद्र को छोड़कर और कहीं पानी न था, इसलिए राम ने अपने धनुष की नोक से यह कुंड खोदा था।

६) सीता कुण्ड :

रामनाथजी के मंदिर के पूर्वी द्वार के सामने बना हुआ सीताकुंड है। कहा जाता है कि यही वह स्थान है, जहाँ सीताजी ने अपना सतीत्व सिद्ध करने के लिए आग में प्रवेश किया था। सीताजी के ऐसा करते ही आग बुझ गई

और आग्नि-कुंड से जल उमड़ आया। वही स्थान अब 'सीताकुंड' कहलाता है।

७) लक्ष्मणतीर्थ :

लक्ष्मण तीर्थ रामेश्वरम से २ किलोमीटर दूरी पर है। लक्ष्मण तीर्थ का निर्माण भगवान लक्ष्मण की स्मृति में किया गया था। भगवान लक्ष्मण की कई सुंदर मूर्तियों को संगमरमर से बनाया गया है। मंदिर में भगवान राम और देवी सीता की मूर्तियाँ भी है। यहाँ लक्ष्मणेश्वर शिव मंदिर है। यहाँ से थोड़ी दूर पर रामतीर्थ नामक खारे जल का सरोवर है। रामनाथपुरम के उत्तर पूर्व में नवपाशनाम मंदिर है, जो 'देवीपटनाम' भी कहा जाता है।

८) पूजा विधि :

रामेश्वरम यात्रा के शास्त्रीय क्रम के अनुसार यात्री पहले उप्पूर जाकर श्रीराम से स्थापित गणेशजी के दर्शन करना है; उप्पर के बाद देवीपत्तन जाना है, जहाँ भगवान श्रीराम ने यहाँ नवग्रहों की स्थापना की थी, यह मूल सेतु है; फिर धनुष्कोटि जाकर समुद्र में स्नान करने के बाद रामेश्वरम के दर्शन करने के लिए जाना चाहिए। रामेश्वरम में भगवान के दर्शन से पहले भक्त अग्नि तीर्थ में नहाकर गीले वस्त्रों से मंदिर परिसर के कुएँ के पानी से नहाते है। रामेश्वरम मंदिर में सुबह ५ बजे स्पटिक लिंग की पूजा की जाती है। बाद में विश्वलिंग और रामनाथेश्वर की पूजा की जाती है। भक्तों के दर्शन के लिए रामेश्वरम मंदिर को सुबह पांच बजे खोला जाता है। पहले पहर में सुबह पांच बजे से लेकर दोपहर एक बजे तक दर्शन किया जाता हैं। एक बजे मंदिर को बंद कर दिया जाता है। दूसरे पहर में शाम तीन बजे से रात नौ बजे तक दर्शन किया जाता है। रामेश्वर मंदिर में होने वाली प्रत्येक पूजा के अलग-अलग नाम हैं- सुबह पांच बजे मंदिर खुलने के बाद सबसे पहले पल्लीयाराई दीप आराधना, सुबह पांच बजकर दस मिनट पर स्पाटिकलिंगा दीप आराधना, सुबह पांच बजकर पैंतालिस मिनट पर तिरुवनन्थाल दीप आराधना, सुबह सात बजे विला पूजा, सुबह दस बजे कालासन्थी पूजा, दोपहर बारह बजे ऊचीकला पूजा, शाम छह बजे सयारात्चा पूजा, रात साढ़े आठ बजे अर्थजामा पूजा, रात आठ बजकर पैंतालीस मिनट पर पल्लीयाराई पूजा होती है।

रामेश्वरम के विशेष उत्सव और त्योहार :

रामेश्वरम में साल में अनेक दिन विशेष उत्सव भक्ति उत्साह के साथ धूम-धाम से मनाए जाते हैं, जो मनोहरी होते हैं। जनवरी-फरवरी में तैराकी पर्व जुलाई-अगस्त में प्रभु विवाह, चित्र में देवताओं का अभिषेक, जेष्ठ में राम लिंग की पूजा (रामलिंग प्रतिष्ठोत्सव), तिरुकल्याणोत्सव (विवाहोत्सव) जो १७ दिनों तक चलती है, स्कन्दजन्मोत्सव, वैशाख में १० दिनों तक वसंतोत्सव, नवरात्रि पर १० दिनों का उत्सव, तीन दिवसीय कार्तिक उत्सव, मार्गशिर में आद्रादर्शनोत्सव तथा महाशिवरात्रि उत्सव, जो १० दिनों तक धूम-धाम से मनाये जाते है। इनके अलावा मकर संक्रांति, वैकुंठ एकादशी तथा रामनवमी को रामोत्सव मनाये जाते हैं। प्रत्येक प्रदोष को श्रीरामेश्वर की उत्सव मूर्ति को वृषभ वाहन पर मंदिर के तीसरे प्राकार की प्रदक्षिणा की जाती है तथा पत्येक शुक्रवार को अंबाजी की उत्सव मूर्ति की शोभा यात्रा की जाती है। पंचमूर्ति उत्सव में शिव पार्वती की उत्सव मूर्तियों को वाहनों पर मंदिर के तीन मार्गों तथा मंदिर के बाहर के मार्ग में प्रदक्षिणा की जाती है और रजत रथोत्सव में यह यात्रा चांदी के रथ में की जाती है।

स्वयं राम से ज्योतिर्लिंग की पूजा की जाने से इस ज्योतिर्लिंग की महिमा अनन्य हैं। आश्चर्य की बात यह है कि चारोओर समुद्र होने पर भी भगवान राम के बाणों से बनाए गए कुओं का पानी मीठा होता है। यहाँ के पानी में नहाने से सब रोगों से मुक्ति मिलती है। इस मंदिर की भव्यता तथा कलात्मकता, उस समय के राजाओं की भगवान पर भक्ति तथा कला के प्रति उनकी रुचि, श्रद्धा को दर्शाता है। अनेक प्रकार की विशेषताओं और विशिष्टताओं से भरी ऐसा भव्य मंदिर दुनिया में कहीं भी नहीं है। इसका दर्शन करना हर किसी का भाग्य है।

"रामतीर्थे नर स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वर शिवम।
विमुक्त सर्व पापेभ्य शिवलोकम च गच्छति।।"

अर्थात् मनुष्य रामतीर्थ में स्नान करके श्री रामेश्वर महादेव के दर्शन करने से पापों से मुक्ति मिलती है और शिवलोक को प्राप्त करता हैं।

मेहन्दी

- डॉ.सुमा जोषी
मोबाइल-९४४९५१५०४६

मेहन्दी का परिचय

हिन्दू संस्कृति में मेहन्दी का महत्व बहुत है। इसे खुशहाली, सौंदर्य और धार्मिक अनुष्ठान आदि का प्रतीक माना जाता है। यह एक परिष्कृत औषधी है। इसका उपयोग विविध प्रकार की दवाइयों के उत्पादन में किया जाता है। मेहन्दी के पौधे के सभी भागों पत्तियों, फूलों, जड, तना, बीजों आदि में औषधीय गुण मौजूद पाए जाते हैं। इसका Latin name है - Lawsonia inermis Linn और Family है - Lythra ceae. इसे कन्नड में - मेहन्दी या मज्झा, तेलुगु में गोरिन्टाकु, हिन्दी में मेहन्दी और अंग्रेजी में Henna या mignonette tree कहा जाता है। संस्कृत में इसे मदयन्तिका कहा जाता है। मूलतः यह अरेबिया और पर्सिया देश का है। मेहन्दी को पूरे भारत में उगाया जाता है। इस पौधे की लम्बाई करीब ४ कदम से ६ कदम भी तक होती है।

आयुर्वेदिक गुण धर्म

रस-तिक्त (कडवा), कषाय (कसैला स्वाद)

गुण-लघु (पाचन के लिए), रूक्ष (शुष्कता)

विपाक - कटु (पाचन के बाद तीखा स्वाद आता है)

वीर्य - शीत

यह कफपित्तहर है। यह खुजली को कम करता है।

इसकी पत्तियाँ, फूल और बीजों का उपयोग किया जाता है।

रसायनिक संगठन

Coumarins, Havonrids, Tanins, Gallic Acid, Glucose, Mannitol और Mucilage.

मेहन्दी के उपयोग

१) पेट के अल्सर के लिए-जठरीय अम्ल की उत्पत्ति आमाशम व आन्तों में अल्सर का कारण बनती है। ऐसा साधारणतः पित्त की गडबडी के कारण होता है। अपनी शीत तासीर की वजह से मेहन्दी आमाशय में इस अम्ल को नियन्त्रित करती है और साथ ही अपने उपचारात्मक गुणों का प्रभाव दिखाती है जिसके फलस्वरूप अल्सर में राहत मिलती है।

२) गुर्दे के अधिकतर रोगी पथरी या गुर्दे के संक्रमण से जूझ रहे हैं। गुर्दे के रोगों से छुटकारा दिलाने में मेहन्दी के पत्ते प्रभाती हैं। ५० ग्राम्स मेहन्दी को आधा लीटर पानी में

कूटकर इसे उबाल लें। फिर पानी को छानकर पियें। इससे गुर्दे के संक्रमण को दूर किया जा सकता है।

३) अगर जोडों में दर्द है तो मेहन्दी और अरण्डी के पत्तों को बराबर मात्रा में एक साथ पीसलें और इस मिश्रण को हल्का सा गरम करके दर्दवाली जगह पर लगायें।

४) मेहन्दी के बीजों के चूर्ण को घी में मिलाकर गोली बना लें। इन गोलियों को रोज सुबह और शाम को भोजन करने के बाद चूसें। इससे धीरे-धीरे बवासीर कम हो जायेगी।

५) मेहन्दी की ताजी पत्तियों को पीसकर हाथों में, तलतों पर और सिर में लगाने से High blood pressure (उच्च रक्तचाप) सामान्य हो जायेगा।

६) रात को साफ पानी में मेहन्दी भिगोकर रखें और सुबह इसे छानकर पियें। इससे खून साफ हो जाता है।

७) मेहन्दी को पीसकर सिर पर लगाने माइग्रेन में काफी फायदा होता है।

८) शरीर के किसी स्थान पर जल जाने पर मेहन्दी की छाल या पत्ते लेकर पीस लीजिए और लेप तैयार कीजिए। इस लेप को जले हुए स्थान पर लगाने से घाव जल्दी ठीक होगा।

९) मेहन्दी में दही, आंवला पाउडर, मेथी पाउडर मिलाकर घोल तैयार करें और इसे बालों में लगाए। १ से २ घंटे बालों में रखने के बाद बाल धो लें। ऐसा करने से बाल काले, घने और चमकदार होते हैं।

१०) हाथों और पैर के तलतों में मेहन्दी लगाने से शरीर की गर्मी कम होती है।

११) मेहन्दी के पत्तों के पेस्ट को लगाने से सरदर्द, स्थानीय गर्मी, सन्धियों में दर्द कम होती है।

१२) गले के क्षेत्र और मौखिक गुहा में दर्द से राहत पाने के लिए मेहन्दी की पत्तियों से तैयार काढ़े का उपयोग करके गरारे करना चाहिए।

१३) अनिद्रा के इलाज के लिए इसके फलों का ठण्डा जलसेक ५०-६० एम.एल. विभाजित खुशक में दिया जाता है।

१४) इस पौधे के फूल का काढ़ा ४०-५० एम.एल. विभाजित मात्रा में बुद्धिवर्धन के लिए दिया जाता है।

१५) दस्त और इरिटेबल बोवेल सिंड्रोम में मेहन्दी के बीजों का चूर्ण या पेस्ट दिया जाता है।

१६) विभिन्न त्वचा रोगों के इलाज के लिए पौधे की पत्तियों का काढ़ा ४०-५० एम.एल. की खुशक में दिया जाता है।

१७) इसके पत्तों का ताजा रस मिश्री में मिलाकर १०-१५ एम.एल. की मात्रा में पीने से पेशाब की जलन और मवाद मिश्रित पेशाब कम हो जाता है।

१८) बुखार के इलाज के लिए लगभग ५०-६० एम.एल. की खुशक में फूलों का ठण्डा अर्क दिया जाता है।

१९) इसकी पत्तियों का पेस्ट स्थानीय रूप से त्वचा रोगों और सूजाक के इलाज के लिए लगाया जाता है।

२०) पीलिया और बढ़े हुए लीवर के रोगियों को ५०-६० एम.एल. की मात्रा में विभाजित खुशक में पौधे की छाल से काढ़ा पिलाया जाता है।

२१) पत्तियाँ के पेस्ट का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों के लिए किया जाता है- बालों को रंगाने के लिए, हाथों और पैरों को रंगाने के लिए रंग भरने वाले एजेंट के रूप में।

२२) मेहन्दी का उपयोग प्राचीन काल से त्वचा, बालों और नाखूनों के साथ-साथ रेशम, ऊन और चमडे सहित कपडों को रंगाने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार मेहन्दी के अनेक प्रयोजन है। यह पूरा परिचय मेहंदी के महत्व को तथा उस की जानकारी के लिए दिया गया है। कृपया आयुर्वेद के वैद्य की सलाह इस का उपयोग करें।

नीतिकथा

संतोष धन

- श्रीमती के.प्रेमा रामनाथन,
मोबाइल - ९४४३३२२२०२

केशव एक किसान था और भगवान विष्णु का बडा भक्त भी वह रोज सबेरे अपना काम शुरू करने के पहले भगवान विष्णु की आराधना करता था और शाम को खेत में काम पूरा करके वापस आने के पहले भी उनकी स्तुति करता था। उसे अपने परिश्रम से मिलने वाले धन से बडा संतोष था। वह खेत में काम करके अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। अपने परिश्रम से जितना मिलता उससे वह संतुष्ट था। लेकिन उसकी पत्नी कमला उसके ठीक विपरीत थी। उसका विचार था कि धन-दौलत से ही समाज में सम्मान मिलता है और सबको आदर प्राप्त होता है। इसलिए वह सदा अपने

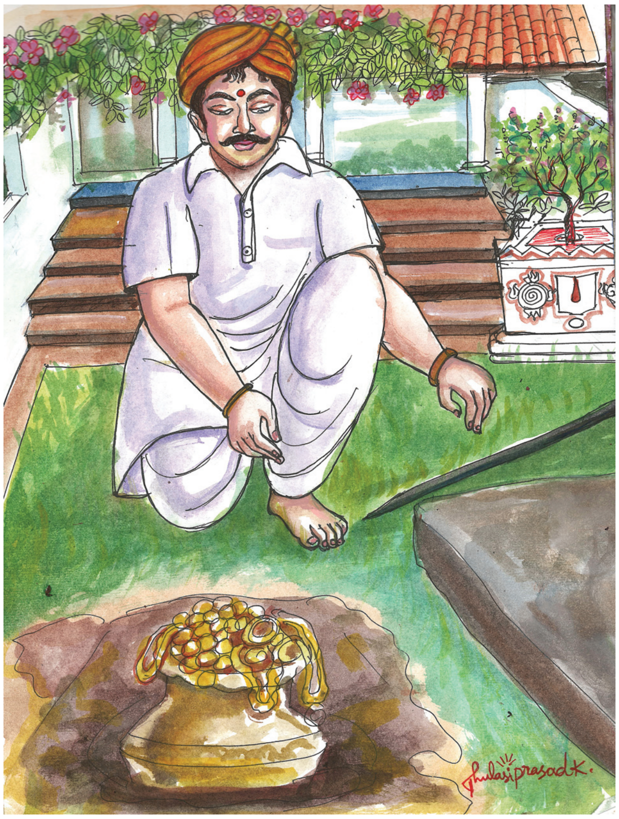

पति को धन-दौलत बढाने के लिए समझाती और प्रेरित करती थी। लेकिन केशव अपनी पत्नी की बात पर जरा भी कान न देता था। पत्नी के बार-बार समझाने पर भी वह यही कहता कि तुम भविष्य के बारे में चिंता मत करो। हमारे बच्चे बडे होकर हमारी रक्षा करेंगे। परंतु पति की बात से कमला कभी संतुष्ट नहीं होती थी।

एक बार भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी ने उन दोनों की बातें सुनें। देवी को किसान की बात से बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान विष्णु से कहा, ‘‘मेरे प्रिय, धन से धरती पर साधु-संत भी बडे धूम-धाम से यज्ञ आदि करते हैं। परंतु पता नहीं, इस किसान को क्या हो गया?’’ तब विष्णु ने जवाब दिया, ‘‘देवी, भगवद्गीता में मैंने इस विषय को समझाया है, जो इच्छा रहित होता है वह मेरे चरण में आ पहुँचता है। यह बात किसान अच्छी तरह जानता है। इसलिए वह पैसे के पीछे नहीं दौडता। यदि तुम चाहो तो उसकी परीक्षा करके देख लो।’’

यह सुनकर देवी किसान की परीक्षा लेने तैयार हुई। उसने दो नए और महँगे कुरते को उसके घर के द्वार पर रखकर कहीं छिपकर देखने लगी। अगले दिन जब किसान की पत्नी ने दरवाजा खोलकर देखा और पाया कि वहाँ दो नए कुरते पडे थे। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वह बडी खुशी से उसे लेकर अपने पति के पास पहुँची। उसने पति से कहा, ‘‘देखो आपके न कहने पर भी देवी लक्ष्मी ने हम पर कृपा की है। उनकी दया से हमें आज दो नए कुरते मिले हैं। आप उसे पहन लीजिए।’’ यह सुनकर किसान ने कहा, ‘‘पता नहीं यह किसकी है? परिश्रम के बिना मिली चीज पर इच्छा करना बुरा और पाप है। इसलिए मुझे ये कुरते नहीं चाहिए। क्योंकि ये मेरे परिश्रम से मिले नहीं है।’’ इतना कहकर वह अपने खेत की ओर निकल पडा।

उस दिन खेत को जोतते समय उसका हल किसी घडे से टकराने की आवाज सुन पडी। उसने वहाँ गड्ढा खोदकर देखा और पाया कि वहाँ सोने का एक बडा घडा था। परंतु किसान ने उस पर परवाह न करके उस गड्ढे को फिर मिट्टी से बंद

करके अपने काम में लग गया। यह सब देखकर देवी लक्ष्मी एक ज्योतिषी का वेष धारण करके किसान की पत्नी से मिलने आयी। उसने कमला से कहा, ''तुम्हारे पति को उसके खेत में सोने का घडा मिला है। पर वह उसे लिए बिना आ रहा है। तुम उसे समझाकर ले आओ और अपनी गरीबी दूर कर लो।''

उस दिन शाम को किसान घर वापस आया। तब पत्नी ने उससे सोने के घडे के बारे में पूछा। किसान ने सच-सच कह दिया। तब पत्नी ने उसे ले आने और अपनी गरीबी को दूर करने के लिए कहा।

यह सुन कर किसान ने कहा, ''यदि मैं बिना परिश्रम से मिले उस घडे को लाऊँ तो अनेक मित्र और रिश्तेदार आ जाएँगे। वे हम पर प्रेम दिखाने का बहाना करेंगे। पैसा खतम होते ही वे हमें अकेले छोडकर चले जाएँगे। इतना ही नहीं, जहाँ अधिक धन होता है वहाँ चोर भी आ जाएँगे। इससे हमारे प्राण की भी हानि होगी। भगवान हमें हर रोज आवश्यक धन देते हैं। जिससे हम अपना रोज का जीवन निश्चिंत बिताते हैं। अब हमारे सुख में कोई कमी नहीं है। इसलिए तुम परिश्रम के बिना मिलने वाला धन पर इच्छा मत करो।'' पति की बात पर अब उसको विश्वास आ गया और वह बिना परिश्रम से मिलने वाले धन के प्रति अपनी इच्छा को त्याग दिया।

किसान की बात से देवी लक्ष्मी अत्यंत प्रसन्न हुई। उस समय वहाँ भगवान विष्णु भी आ पहुँचे थे। उन दोनों ने ''जब आवत संतोष धन, सब धन धूरि समान'' मानने वाले किसान और उसकी पत्नी को अपना दिव्य दर्शन दिया।

नीति पद्यम्

3

आन्ध्र देश के कबीर श्री वेमना

(संत वेमना की कुछ चुनी हुई रचनायें)

मूर्ख-पद्धति

अज्ञानमे शूद्रत्वमु सुज्ञानमु ब्रह्ममगुट
श्रुतुलनु विनरा अज्ञान मणचि वाल्मिकि
सुज्ञानपु ब्रह्मंदे चूडर वेमा
विश्वदाभिरामा विनुरवेमा।।३।।

अज्ञान वश ऊँच-नीच का भेद मानना ही शूद्रत्व है। सुज्ञान ही परब्रह्म का स्वरूप है, ऐसे विवेक से अलंकृत व्यक्ति ही ब्राह्मण है। जन्म से बहेलिया होते हुये भी अपने अज्ञान के आवरण को तोड कर वाल्मीकि ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गये हैं। अतः श्रुतियों का आदेश है, ''प्रज्ञानम् ब्रह्म'', मान कर चलने से ही मुक्ति मिल सकती है।

चित्रकथा

तिरुप्पाण आल्वार

तेलुगु में - श्री डी.श्रीनिवास दीक्षितुलु

हिन्दी में - डॉ.एम.रजनी

चित्र - श्री के.तुलसीप्रसाद

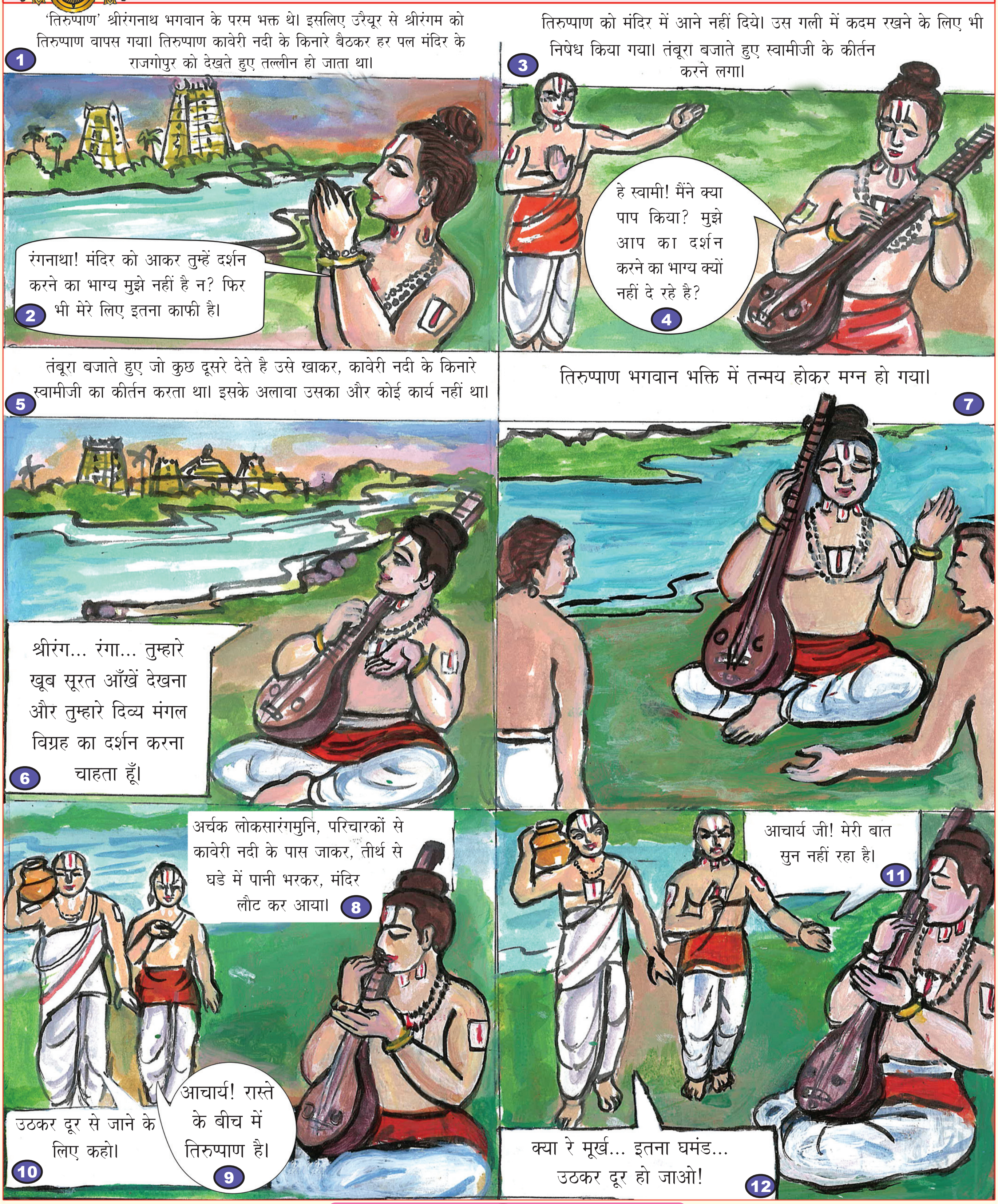

मुनि ने रास्ते में हुए पत्थर को लेकर तिरुप्पाण के ऊपर फेंका। तिरुप्पाण के मुँह से खून धारा से बहने लगा। तिरुप्पाण उठकर... 13
मुनिवर्य! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। दूर जा रहा हूँ। हे रंगा... 14
एक बात भी बोले बिना उठकर चले गया। 15
खून देखते ही मुनि में पश्चाताप की भावना जाग उठी। उसी दिन रात स्वप्न में भगवान जी दर्शन देकर, मेरे भक्त को अपने कंधों पर बिठा कर लावो। 16
अगले दिन कावेरी नदी में स्नान करके तिरुप्पाण के पास गया। लोकसारंगमुनि अपने भुजस्कंधों पर तिरुप्पाण को बिठाकर मंदिर आया। 17
मुनिवर्य! मुझे उतारो। अपचार... अपचार! 18
यह मेरा पुण्य फल है तिरुप्पाण! 19
मुनि ने तिरुप्पाण को अपने कंधे पर बिठाकर मंदिर के चारों ओर तीन प्रदक्षिण करवाया तदुपरांत तिरुप्पाण गर्भालाय में प्रवेश किया। 20
श्रीरंगनाथा! प्रत्यक्ष रूप से मुझे आप का दर्शन प्राप्त हुआ। मेरा जन्म धन्य हुआ रंगा! 21
तिरुप्पाण! तुम आल्वार हो! निसंदेह तुम आल्वार ही हो!... 22
तिरुप्पाण ने बडी खुशी से ''अमलनादिप्पिरान'' नामक दिव्यप्रबंध का गान किया। 23
तुम्हारा वाहन बनकर धन्य बन गया! 24
श्रीरंग! रंगा!! 25
सभी भक्त गण एक कंठ से कहने लगे कि... 26
मुनिवाहन तिरुप्पाण! 27
योगिवाहन आल्वार! 28
लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु!
स्वस्ति।

'क्विज'

आयोजक - डॉ.एन.प्रत्यूषा

१) आश्विज-चतुर्दशी के दिन किस राक्षस का वध हुआ?

अ) बकासुर आ) नरकासुर इ) मयासुर ई) असुरासुर

२) रावण की माता का नाम क्या है?

अ) कौसल्या आ) कैकेई इ) कैकसी ई) कामिनी

३) तिरुपति से तिरुमल जाने के लिए किस वारधी का निर्माण कार्य चल रहा है?

अ) गरुडवारधी आ) मयूर वारधी इ) हंस वारधी ई) हनुमान वारधी

४) वशिष्ट महर्षि की पत्नी का नाम क्या है?

अ) अहल्या आ) अरुन्धति इ) अनसूया ई) गौतमी

५) महाभारत युद्ध में जिस व्यूह के अंतर्गत अभिमन्यु को घेरकर मारा गया था?

अ) शकट आ) क्रौंच इ) चक्र ई) सूचीमुख

६) तिरुचानूर पद्मावती माँ का ब्रह्मोत्सव किस मास में मनाया जाता है?

अ) श्रावण मास आ) आषाढ मास इ) माघ मास ई) कार्तिक मास

७) सीता माता को लंका में कहाँ रखा गया?

अ) पुष्पवाटिका आ) कारागृह इ) अशोक वाटिका ई) वन

जवाब

१) आ २) इ ३) अ ४) आ ५) इ ६) ई ७) इ

चित्रलेखन

इस चित्र को रंगों से अब भरें क्या?

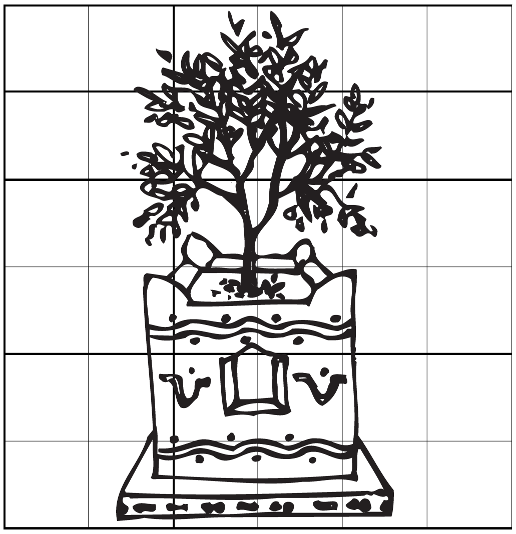

बगल में सूचित चित्र को नीचे के डिब्बों में खींचिये-

Printed by Sri P. Ramaraju, M.A., and Published by Dr.K. Radha Ramana, M.A., M.Phil., Ph.D., on behalf of Tirumala Tirupati Devasthanams and Printed and Published at Tirumala Tirupati Devasthanams Press, K.T.Road, Tirupati-517 507. Editor : Dr.V.G. Chokkalingam, M.A., Ph.D.

तिरुचानूर, श्री पद्मावती देवी का लक्षकुंकुमार्चना
(२१-११-२०२१)

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY Published by Tirumala Tirupati Devasthnams
Printing on 25-10-2021 & Posting at Tirupati RMS Regd. with the Registrar of Newspapers for India under RNI No.10742/1957. Postal Regd.No.TRP/152/2021-2023
"LICENCED TO POST WITHOUT PREPAYMENT No.PMGK/RNP/WPP-04(2)/2021-2023"
Posting on 5th of every month.

तिरुमल श्री बालाजी के मंदिर में दीपावली

(०४-११-२०२१)